ओ३म्

ार्य-दास-युद्ध सम्बन्धी
्य मत का खण्डन

लेखक :

रामगोपाल शास्त्री वैद्य

'वेदों में आयुर्वेद' के लेखक एवं पूर्व रिसर्चस्कालर तथा

प्रोफैसर डी० ए० वी० कालेज, लाहौर

ओ३म्

वेद में आर्य-दास-युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन

लेखक व प्रकाशक :
रामगोपाल शास्त्री वैद्य
'वेदों में आयुर्वेद' के लेखक एवं पूर्व रिसर्चस्कालर
डी० ए० वी० कालेज, लाहौर

मुद्रक :
सुरेन्द्रकुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस, सोनीपत

प्रथमबार २००० | सं० २०२७ वि० सन् १९७० ई० | मूल्य ०-७५

विषय-सूची

प्राक्कथन

सन् १९६९ के फरवरी मास से दिल्ली के कई कालेजों में वेद-सम्बन्धी गोष्ठियां और व्याख्यान होने आरम्भ हो गए। कहीं-कहीं तो विश्वविद्यालय के उच्चकोटि के भारतीय विद्वानों ने अपने व्याख्यानों में यह कहना आरम्भ कर दिया कि—आर्य लोग भारत में बाहर से आये हैं, और भारत के आदिवासी द्रविड, कोल, भील, संथाल आदि थे; जिन्हें आर्यों ने पराजित करके भारत पर आधिपत्य जमा लिया। इन व्याख्यानों को सुनने के लिये दयानन्द ब्राह्म-महाविद्यालय लाहौर के मेरे पुराने शिष्य डा० रामस्वरूप एम० ए० प्राध्यापक हंसराज कालेज, दिल्ली तथा डा० वेदमित्र एम० ए० बी० टी० रिटायर्ड प्रिंसिपल गवर्नमेंट स्कूल दिल्ली प्रायः जाया करते थे। वे उन व्याख्यानों को सुनकर जब आते थे, तो यही कहते थे कि इनका उत्तर देना चाहिए। इससे कालेज के छात्रों में वेद के प्रति अश्रद्धा बढ़ती चली जा रही है। उन्हीं दिनों मेरे पौत्र राजन्य छठी कक्षा के विद्यार्थी की 'प्राचीन-भारत' नाम की पुस्तक मेरे हाथ में लग गई। उस पुस्तक में 'वैदिक-युग का जीवन' विषय पर आर्य और दस्यु के सम्बन्ध में नीचे लिखा अंश मेरी दृष्टि में पड़ा—

'जब पहले-पहल आर्यों ने भारत में पदार्पण किया, तो उन्हें भूमि के लिए उन लोगों से युद्ध करना पड़ा, जो यहां पहले से रह रहे थे। आर्य इन लोगों को दस्यु या दास कहते थे। आर्य गौर वर्ण के थे और दस्यु काले रङ्ग और चपटी नाक वाले थे। दस्यु देवताओं की पूजा नहीं करते थे, जिनकी आर्य पूजा करते

थे। यह जो भाषा बोलते थे, उसे आर्य नहीं समझते थे। आर्य संस्कृत बोलते थे। आर्यों ने दस्युओं को युद्ध में पराजित किया, परन्तु उनके साथ दयालुता का व्यवहार नहीं किया और अनेक दस्युओं को दास बना लिया। दस्युओं को आर्यों की सेवा करनी पड़ती थी। उन्हें कठिन और नीच काम भी करना होता था।'

जब मैंने पुस्तक के ये वाक्य पढ़े, तो मेरे हृदय में बड़ी चोट लगी। एक ओर तो कोमल हृदय के बच्चों में और दूसरी ओर कालेज के युवा छात्रों में यह विषैला विचार भरा जा रहा है कि—आर्य और दस्यु भिन्न-भिन्न लोग थे। अपनी ७८ वर्ष की आयु में भी मैंने इस विषय पर अपनी लेखनी उठानी आरम्भ कर दी।

मेरे पास पुस्तक आदि सामग्री नहीं थी। इसके लिये डी० ए० वी० कालेज मैनेजिंग कमेटी के प्रधान श्री गोवर्धनलाल दत्तजी ने बड़ी उदारता से पन्नालाल गिरधारलाल डी० ए० वी० कालेज पुस्तकालय से मुझे वेद-सम्बन्धी सब पुस्तकें भिजवा दीं और साथ ही पं० सोमकीर्ति वेदालंकार को लिखने के लिए मेरे पास भेज दिया। उनकी सहायता का मैं बड़ा आभारी हूं।

टिप्पणी—इस पुस्तक के लिखने में मैंने 'वैदिक माईथोलोजी' और 'वैदिक इण्डैक्स' इन दो पुस्तकों का आधार लिया है। जहां-जहां भी पुस्तक में मैंने उद्धरण दिये हैं, वे 'वैदिक माइथोलोजी' के हिन्दी अनुवाद वैदिक-देवशास्त्र तथा 'वैदिक इण्डैक्स' के हिन्दी अनुवाद वैदिक-कोश से उद्धृत किए हैं। अतः पाठक सब स्थानों में पुस्तक के अंग्रेजी नाम होने पर भी हिन्दी के अनुवाद के उद्धरण समझें।

—वैद्य रामगोपाल शास्त्री, दिल्ली।

भूमिका

ऋग्वेद में आर्य दास तथा दस्यु शब्दों को देखकर पाश्चात्य विद्वानों ने यह मिथ्या कल्पना की कि वैदिक काल में आर्य तथा दास भिन्न-भिन्न जातियां थीं। प्रो० ए० ए० मैक्डानल एवं प्रो० कीथ ने अपनी रचना 'वैदिक इण्डैक्स' के दो भागों में वेदों में आए 'वर्ण' तथा 'जाति' आदि पदों के सम्बन्ध में १९१२ ई० में लन्दन से यह ग्रन्थ प्रकाशित किया था। उन्होंने लिखा कि आर्य और दासों में परस्पर युद्ध होते थे। आर्य लोग उन आदिवासी दासों के पुरों (नगरों) को विध्वंस कर देते थे। उनका कहना है कि वेद में आदिवासियों और उनकी प्रजा का भी वर्णन है। आर्य-दास युद्धों में जब कुछ आदिवासी मर जाते थे, तो शेष जीवित आदिवासियों को पकड़ कर आर्य अपना दास बना लेते थे। उन आदिवासी द्रविड़, कोल, भील, संथाल आदि का वर्ण कृष्ण होता था। उनमें कई 'अनास' अर्थात् बैठी हुई नाक वाले होते थे। उनकी बोली कठोर होती थी। आर्य और दासों में प्रमुख रूप से धर्म का अन्तर था। दास लोग आर्य-देवताओं से घृणा करते थे, वे यज्ञों के विरोधी थे। दासों का मुख्य धर्म लिङ्ग-पूजा था। इसलिये वेद में उन्हें 'शिश्नदेव' कहा गया है। आर्य लोग दासों की स्त्रियों को अपनी दासी अर्थात् नौकरानी बना लेते थे। इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वानों ने लिखा कि जहां दास तथा दस्यु लोगों का आर्यों के साथ युद्ध होता था वहां आर्यों का आर्यों के साथ भी युद्ध हुआ करता था। इस प्रकार की अनेक निराधार कल्पनायें उन्होंने अपने ग्रन्थों में की हैं।

वेद के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसा क्यों किया? इसका मुख्य कारण था कि अंग्रेजों को भारत पर राज्य करना

था, और उनकी मुख्य नीति यह थी कि आर्यों के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद पर ही कुठाराघात किया जाए। जिससे यह सिद्ध किया जाए, कि वेद में लिखे हुए 'दास' तथा 'दस्यु' भारत के आदि-वासी ही हैं। वे इस देश के मूल निवासी थे, जिन्हें आर्य लोगों ने बाहर से आकर भारत-भूमि से खदेड़ा और उन्हें युद्धों में परास्त करके भारत को सदा के लिये अपने अधीन कर लिया।

फूट के इस बीजारोपण से भारत की द्रविड़,कोल,भील आदि जातियों में सदा के लिए सवर्ण हिन्दुओं के विरुद्ध घृणा उत्पन्न हो गई, जिसका कुपरिणाम हम इस समय भी देख रहे हैं।

प्रथम आक्रमण

वैदिक-साहित्य को भ्रष्ट करने के लिए १५ अगस्त १८११ को कर्नल बोडन नामक एक व्यक्ति ने आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय को अपने स्वीकार-पत्र (Will) के अनुसार पुष्कल धन राशि दी, और उस धन के लिए शर्त यह थी कि उससे अंग्रेजों को आर्य-साहित्य का ज्ञान कराया जाय, जिससे वे इस साहित्य को जानकर हिन्दुओं को ईसाई बना सकें। विश्व-विद्यालय में यह काम 'मोनियर विलियम' को सौंपा गया।

बोडन ट्रस्ट का उद्देश्य—

Chair of oriental studies and the Oxford Uuiversity under Boden Trust, whose chief object was as follows as given by Monier Willian in the Introduction to his well known Sanskrit English Dictionary.

'That the special object of his (Boden's)—munificient request was to promote the translation of the scriptures into English, so as to enable his countrymen to

proceed in the conversion of the natives of India to christian religion.'—

मोनियर विलियम ने बोडन ट्रस्ट के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है—

बोडन साहब के इस ट्रस्ट को महान् दान करने का यह प्रसिद्ध लक्ष्य था कि भारत की संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद करके देशवासियों को इस योग्य बनाया जाय कि वे संस्कृत ग्रन्थों को जानकर भारतीय जातियों का धर्म परिवर्तन करके ईसाई बनाएं।

सन् १८११ से लेकर ओक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय में यह काम चलता रहा। संस्कृत-इङ्गलिश डिक्शनरी तैयार हो गई और बहुत से अंग्रेज छात्रों को आर्यों के साहित्य की शिक्षा दी जाने लगी। शिक्षक वर्ग अध्यापन-काल में ही छात्रों को संस्कृत-साहित्य के साथ-साथ ऐसी शिक्षा भी देते गये कि जिससे वे भारत में जाकर हिन्दुओं के मनों को कलुषित कर सकें।

मैकाले का भारत आगमन.

मैकाले जो एक पादरी परिवार में उत्पन्न हुआ था, और जो पीछे लार्ड मैकाले बन गया, वह सन् १८३४ में 'लीगल एडवाइजर टु दि कौंसिल आफ इण्डिया' बन कर भारत में आया, और यहां पर उसे ऐजूकेशन बोर्ड का प्रधान बनाया गया। वह यहां चार वर्ष रहा, और इन चार वर्षों में भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में घूमकर उसने अनुभव किया कि—जिस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी राज्य को चला रही है, उससे हम हिन्दुओं को ईसाई नहीं बना सकते, इसलिये उसने पहला

कार्य यह किया कि भारतवर्ष में जहां-जहां संस्कृत पढ़ाई जाती थी, उसे अनुदान देना बन्द करवाया, और कलकत्ता में स्थानीय कालेज को मिलने वाला अनुदान (Grant) भी बन्द कर दिया गया।

जब वह १८३९ में इङ्गलैण्ड पहुंचा, तो उसने कहा कि संस्कृत मैंने इसलिये बन्द की, कि यदि संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन इसी प्रकार जारी रहा, तो भारत में हम अंग्रेजी सभ्यता को नहीं फैला सकेंगे।

संस्कृत-भाषा हिन्दुओं के धर्म-ग्रन्थों का मूल है। यदि हम इस मूल भित्ति को समाप्त कर देंगे और इसके स्थान में शिक्षा अपने हाथ में लेकर अंग्रेजी का शिक्षण कर देंगे, तो बिना किसी प्रयत्न के बङ्गाल के हिन्दु विशेषकर उच्च जातियों के हिन्दु स्वयमेव ईसाई बन जायेंगे।

मैकाले ने जो पत्र अपने पिता को लिखा, उसी से उसकी मानसिक भावना जानी जा सकती है—

'Calcutta October 12, 1836—My dear Father, our English schools are flourishing wonderfully : The effect of this education on the Hindus is prodigious. No Hindu who has received an English education, ever remains sincerly attached to his religion. Some continue to profess it as a matter of policy, and some embrace christianity It is my belief that, if our plans of education are followed up, there will not be a single idoldier among the respectable Casts in Bengal thirty years hence And this will be affected with out any efforts to praselytise, with out the smallest interference with religions liberty by natural operations of Knowledge and reflection. I heartly rejoice in the prospect—Ever yours most affectionately. —T. B. Macaullay.

मैकाले ने कलकत्ता से १२ अक्तूबर १८३६ को अपने पिता को इस प्रकार पत्र लिखा—

मेरे प्यारे पिता ! हमारे अंग्रेजी स्कूल बड़ी शीघ्रता से उन्नति कर रहे हैं। इस अंग्रेजी शिक्षा का हिन्दुओं पर बड़ा लाभकारी प्रभाव हुआ है। कोई भी हिन्दु जिसने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की है, अपने धर्म के प्रति श्रद्धावान् नहीं रहेगा। कईयों ने तो इस शिक्षा से ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। यदि यह शिक्षा प्रचलित रही तो अब से ३० वर्ष के भीतर-भीतर कोई भी उच्च-जाति का हिन्दु बङ्गाल में मूर्तिपूजक नहीं रहेगा। इस प्रकार बिना किसी यत्न के और इनके धर्म में बाधा डाले बिना ये स्वयमेव ईसाईयत की ओर प्रवृत्त हो जायेंगे। इस प्रकार की उन्नति से मैं बहुत प्रसन्न हूं।

आपका प्यारा
टी० बी० मैकाले

मैकाले के इस पत्र से सिद्ध हो जाता है कि वह संस्कृत का पठन-पाठन सर्वथा बन्द करके अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार इस लिये करना चाहता था कि भारत की उच्च जातियों के हिन्दु अपने धर्म को छोड़कर ईसाई धर्म में प्रवेश करें। वास्तव में मैकाले का नाम टी० बी० मैकाले था—परन्तु भारत के लिये वह टी० बी० का रोग सिद्ध हुआ।

मैकाले से एफ० मैक्समूलर की भेंट

मैकाले सन् १८३९ में जब इङ्गलैण्ड में आया तब वह एक संस्कृत के विद्वान् की खोज में था। वह ऐसा विद्वान् चाहता था जो वेद के सम्बन्ध में योग्यता रखता हो। एच० एच० विलसन और वारोन वुनसन के द्वारा मैकाले को पता लगा कि जर्मन देशोत्पन्न मैक्समूलर इस काम के योग्य है।

दिसम्बर १८५४ में मैक्समूलर और मैकाले की भेंट हुई। उस समय मैकाले ५५ वर्ष का अनुभवी तथा कुशल राजनीतिज्ञ बन चुका था और मैक्समूलर ३२ वर्ष का नवयुवक था। मैकाले और मैक्समूलर की कई घण्टे बात-चीत होती रही, और मैकाले ने मैक्समूलर को कहा कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी लाखों रुपए व्यय करने को उद्यत है, यदि आप हिन्दुओं के आदि ग्रन्थ ऋग्वेद का अनुवाद करें, और इस ढंग से लिखें कि जिससे वैदिक-विचार-धारा को भ्रष्ट किया जाए। तुम इस काम में अंग्रेजी सरकार को सहयोग दो, और हिन्दुओं के हृदयों में वेद के लिये अश्रद्धा उत्पन्न करो, जिससे अंग्रेजी राज्य की नींव सुदृढ़ हो, और हिन्दुओं को बिना किसी यत्न के ईसाई बना सकें।

मैक्समूलर की नियुक्ति

मैकाले के सुझाव से जर्मन देशोत्पन्न इङ्गलैण्ड वासी प्रो० एफ० मैक्समूलर ने यह काम १८५५ में आरम्भ किया। मैक्स-मूलर ने 'आक्सफोर्ड विश्व विद्यालय' में वेदानुसंधान के काम में सन् १८५५ ई० से लेकर १९०० ई० तक वेद के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा। भारतीय लोग यह समझते रहे कि मैक्स-मूलर ने वेदानुसंधान करके वैदिक-साहित्य के लिए बड़ा उप-कार किया है, परन्तु मैक्समूलर के हृदय में तो वेद को जड़ से नष्ट करने की भावना थी। उसका लक्ष्य था कि वैदिक विचारधारा तथा श्रद्धा को नष्ट करके भारत में ईसाई मत का बीजारोपण किया जाए। मैक्समूलर का लक्ष्य उनके निम्न पत्रों द्वारा सिद्ध होता है—

प्रथम पत्र—मैक्समूलर ने १८६६ में अपनी पत्नी को लिखा था—

'I hope I shall finish the work and I feel convinced, though I shall not live to see it, yet this addition of mine and the translation of the Veda will here after tell to great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root is. I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years.'

'अर्थात् मुझे आशा है कि मैं यह कार्य सम्पूर्ण करूंगा और मुझे पूर्ण विश्वास है,यद्यपि मैं उसे देखने को जीवित न रहूंगा, तथापि मेरा यह संस्करण और वेद का आद्यन्त अनुवाद बहुत हद तक भारत के भाग्य पर और उस देश की लाखों आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालेगा। वेद इनके धर्म का मूल है, और मुझे विश्वास है कि इनको यह दिखाना ही कि यह मूल क्या है—उस धर्म को नष्ट करने का एक मात्र उपाय है, जो गत ३ सहस्र वर्षों से उससे (वेद से) उत्पन्न हुआ है।'[1]

द्वितीय पत्र—यह पत्र १६ दि० १८६८ को उन्होंने तत्कालीन भारत के मन्त्री ड्यूक आफ आर्गायल को लिखा था—

The ancient religion of India is doomed, if christianity does not step in, whose fault will it be ?

'भारत के प्राचीन धर्म का पतन हो गया है, यदि अब भी ईसाई धर्म प्रचलित नहीं होता है, तो इसमें किसका दोष है ?'

तृतीय पत्र—सन् १८६६ ई० में ब्रह्मसमाजी मिस्टर एन० के० मजुमदार को लिखा—

---

१. यह तथा अगले पत्र Life and Letters of Max Muller से उद्धृत हैं।

'You know for how many years, I have matched your efforts to purify the popular religion of India and thereby to bring it near to the purity and perfection of other religions, particularly of christianity .....Tell me some of your chief difficulties that prevent you and your countrymen from openly following christ.

'अर्थात् तुम जानते हो मैंने तुम्हारे भारत के प्रिय धर्म को शुद्ध करने के प्रयत्न एवं उसको अन्य धर्मों, विशेष कर ईसाई मत की पवित्रता और पूर्णता के समीप लाने के कार्य का अनेक वर्षों से अध्ययन किया है···तुम मुझे अपनी मुख्य परेशानियां बताओ, जो तुम्हें तुम्हारे देशवासियों को स्पष्ट रूप से ईसाई बनने में बाधा डालती हैं।'

चतुर्थ पत्र—प्रो० मैक्समूलर के एक मित्र ई० बी० पूसी ने उन्हें निम्नलिखित पत्र लिखा—

A friend of Prof. Max Mullar, Mr. E. B. Pussey writes to him thus:—

'Your work will form a new era in the efforts for conversion of India and Oxford will have reason to be thankful for that, by giving you a home, it will have facilitated a work of such primary and lasting importance for the conversion of India, and which by enabling us to compare that early false religion with the true illustrates the more than blessedness of what we enjoy.'

'तुम्हारा कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के प्रयत्न में एक नवीन युग का निर्माण करेगा, और आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय आपको यह स्थान देकर धन्यवाद का पात्र है। यह मुख्य और अत्यन्त महत्वपूर्ण (वेदभाष्यादि) कार्य भारत के धर्म परिवर्तन के कार्य को सरल करेगा और······।

ब्राह्मण-ग्रन्थों और निरुक्त के प्रति मैक्समूलर के निन्दनीय वाक्य—

As the authors of the Brahmanas were blinded by theology, the authors of the still later Niruktas were deceived by etymological fictions, and both conspired to mislead by their authority later and more sensible commentators, such as Sayana."[1]

'अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने मतवाद से अन्धे होकर पुस्तकें लिखी हैं, और उनके पीछे निरुक्तकारों ने धातुवाद के झूठे आडम्बर में फंसाकर धोखा दिया है। और इन दोनों प्रकार के लेखकों ने जनता को अपनी विद्वत्ता के कारण धोखा दिया है, और इनके पीछे के काल के सायण जैसे समझदार टीकाकारों को भ्रामक मार्ग पर डाल दिया है।'

ग्रिफिथ का कार्य

आर० टी० एच० ग्रिफिथ, जो पहले बनारस कालेज का प्रिंसिपल था, उससे ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद सन् १८८९ में कराया गया। जिसमें वेद के विचारों को भ्रष्ट करने के लिये उसने अपने भाष्य में मनमानी की। उसका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जा रहा है—

दासपत्नीरहिगोपाः। ऋक् १।३२।११॥

इस मन्त्र की टिप्पणी में दास पद पर टिप्पणी करते हुये लिखा है कि—'जङ्गली, डाकू भारत के अनार्यों में से कोई एक'।

It means also, a savage, a barbarian, one of the non-Aryan inhabitants of India.

1. See preface Page XI of Griffith's English Translation of Rig Veda.

आभिः स्पृधः । ऋक् ६।२५।२ ।।

इस मन्त्र का अनुवाद करते हुए 'दासों की जातियां' (Tribes of dasas) वाक्य उसने अपने आप जोड़ दिया है। मन्त्र में कहीं भी जाति का वर्णन नहीं है।

त्वं तां इन्द्रोभयां अमित्रान् । ऋक् ६।३३ ३ ।।

इस मन्त्र के अनुवाद में लिखा है कि (Both races) दो जातियें। मन्त्र में उभयान् अमित्रान्'पाठ है। इसका अर्थ है—दो प्रकार के शत्रु। ग्रिफिथ ने यहां पर अमित्र का अर्थ जाति किया है।

कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः । ऋक् ६।४७।२१ ।।

इस मन्त्र की टिप्पणी पर ग्रिफिथ ने—(Dark aborigines) 'काले वर्ण के मूल निवासी' यह लिखा है। हालां कि वेद में मूल आदिवासी अर्थात् मूल निवासीवाची कोई शब्द ही नहीं है, जिसका उक्त अर्थ किया गया है। यहां हमने स्थालीपुलाक न्याय से उद्धरण दिए हैं कि इस प्रकार वेद को भ्रष्ट करने के लिए इन लोगों ने यत्न किया है।

मैक्समूलर के कुछ काल पीछे आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय के अनुसंधान विभाग का अध्यक्ष ए० ए० मैकडानल को बनाया गया। उसने अपनी पद्धति को स्थाई रूप से प्रचलित रखने के लिए वेद के छात्रों के लिए—

१. वैदिक रीडर फार स्टूडैंट्स (Vedic Reader for students)। २. वैदिक ग्रामर (Vedic Grammar)। ३. वैदिक मैथालोजी (Vedic Mythology)। इन तीन ग्रन्थों को लिखा।

सन् १९१२ में प्रो० कीथ के साथ मिलकर'वैदिक इण्डैक्स' नामक पुस्तक की रचना की। इस प्रकार अनेक ग्रन्थ वैदिक-

विचार धारा को भ्रष्ट करने के लिए लाखों रुपये व्यय करके अंग्रेज सरकार ने लिखवाये।

आर्य लोग भारत के बाहर से आये हैं, भारत के मूल निवासी द्रविड़-कोल-भील-संथाल आदि ही यहां के आदिवासी थे, यह विचार सब से प्रथम **कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया** में दिया गया है।

नियम-बद्ध योजना—भारत में पाश्चात्य मान्यताओं का प्रसार करने के लिए बनारस और लाहौर में केन्द्र बनाए गए। बनारस में टी० एच० ग्रिफिथ को बनारस कालिज का प्रिंसिपल बनाया गया। लाहौर में ए० सी० वुलनर को ओरिएन्टल कालिज का प्रिंसिपल बनाया गया। इन कालिजों में संस्कृत के एम० ए० उत्तीर्ण छात्रों (विशेषकर ब्राह्मण) को उच्चतम छात्रवृत्ति देकर आक्सफोर्ड भेजा जाता। था और जो छात्र उन गौरांग महाप्रभुओं से शिक्षा लेकर आते थे, उन्हें प्रिंसिपल अथवा उच्च-कोटि का प्रोफेसर बनाया जाता था। लाहौर और बनारस में दोनों प्रिंसिपल वेद की कक्षाओं को स्वयं पढ़ाते थे, और वहां वही पद्धति पाठ्यक्रम की रखी गई थी जो आक्सफोर्ड में थी।

इस प्रकार भारतीय छात्र, जिन्हें अपने ग्रन्थों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता था, विदेशी गुरुओं के पास जाकर उनके रङ्ग में ही रङ्ग जाते थे। इस तरह निरन्तर अनेक वर्षों तक यह योजना चलती रही। इसका परिणाम यह हुआ कि वे भारतीय विद्वान् ही पाश्चात्य पद्धतियों के प्रचार और प्रसार के साधन बन गए। इन भारतीयों ने भी वही राग अलापना आरम्भ किया जो अंग्रेज चाहते थे।

सन् १९४७ में अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये। परन्तु दु:ख है कि अभी तक भी विश्व-विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विद्यालयों में उसी विषाक्त-पद्धति से शिक्षा दी जा रही है। और वही विषाक्त-विषय पढ़ाये जा रहे हैं, जिनमें आर्य-दास-दस्यु को भिन्न जातियां कहा गया है। और यही सिखाया जाता है कि भारत के मूल निवासी आर्य नहीं थे। इन्होंने बाहर से आकर आदिवासियों पर आक्रमण किये और इन्हें अपना दास बनाया। जब तक इस भ्रान्त मान्यता को समूल नष्ट नहीं किया जायेगा, तब तक वैदिक-संस्कृति और भारतीय-चिन्तन खड़े नहीं हो सकते।

वास्तव में आर्य दास तथा दस्यु कोई जातियां नहीं थीं, और न ही इनके युद्धों का वर्णन वेद में है। वेद में ये शब्द गुणवाचक है, जातिवाचक नहीं। जो पाश्चात्य लेखक ऋग्वेद में आदिवासियों को चपटी नाक और काली त्वचा वाले बताते हैं, वह असत्य है। वे यह भी कहते हैं कि आर्य लोग आदिवासियों की बस्तियों (पुरों) का विध्वंस करते थे, और कभी-कभी आर्यों का आर्यों के साथ भी युद्ध हो जाया करता था। उनकी ये सारी बातें वेद और सत्यान्वेषण के विरुद्ध हैं। मेरा उनसे खुला प्रतिवेदन है कि वे सामने आएं और इस विषय में चर्चा करें, ताकि भारत से इस मान्यता को नष्ट किया जा सके।

आर्य समाज मार्ग,
करोल बाग, नई दिल्ली

लाहौर वास्तव्य
रामदास वधवात्मज
रामगोपाल शास्त्री वैद्य

मानव-जाति के दो वर्ग

आर्य=श्रेष्ठ और दस्यु=हिंसक

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् । शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥ ऋक् १।५१।८॥

हे परमैश्वर्यवान् इन्द्र ! इस संसार में आर्य=श्रेठ और दस्यु=विनाशकारी दो प्रकार के स्वभाव वाले पुरुष हैं। हे इन्द्र ! आप बर्हिष्मान् अर्थात् परोपकार रूप यज्ञ में रत आर्यों की सहायता के लिए दस्युओं का नाश करें। हमें शक्ति दें कि अव्रती अर्थात् अनार्य दुष्ट पुरुषों पर हम शासन करें। हे इन्द्र ! हम सदा ही तुम्हारी स्तुतियों की कामना करते हैं। आप आर्य सद्-विचारों के प्रेरक बनें, जिससे हम अनार्यत्व को त्याग कर आर्य बनें।

आर्य भारत के मूलवासी

किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहाँ के जंगलियों को लड़कर जय पा के निकाल के इस देश के राजा हुए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत
सत्यार्थप्रकाश समु० ८

ओ३म्

वेद में आर्य-दास-युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन

पुस्तक का उद्देश्य

पाश्चात्य मान्यता के देशी और विदेशी लेखकों का मत है कि ऋग्वेद में आये आर्य, दास तथा दस्यु शब्द भिन्न-भिन्न जातियों के बोधक हैं। उनका पक्ष है कि आर्य लोग भारत के मूल-निवासी नहीं थे। भारत के आदिवासी, जिन्हें वेद में दास और दस्यु शब्दों से संकेतित किया गया है, वे भारत के द्रविड़ कोल, भीलादि मूल-निवासी थे।

आर्यों का धर्म, सभ्यता, रंग-रूप, आकृति, भाषादि भिन्न थीं, और आदिवासी जातियां जो थीं उनका वर्ण काला था, उनकी नाक चपटी थी, वे शिश्न अर्थात् लिङ्ग की पूजा किया करते थे, उनका आर्यों के साथ सदा युद्ध हुआ करता था। आर्यों की बुद्धि प्रखर थी, उनके शस्त्र भी भयंकर थे, अतः वे प्रायः आदिवासियों पर विजयी हो जाते थे और उन्हें अपना

दास बना लेते थे। इन मूल-निवासियों के लिये दास तथा दस्यु, जो घृणा-वाचक शब्द हैं, का वेद में प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार के निर्मूल और कल्पित पाश्चात्य मत का खण्डन ही इस पुस्तक का मूल उद्देश्य है। ये सारी भ्रान्तियां फैलाना वैदिक-धर्म को भ्रष्ट करने, अंग्रेजी राज्य को सुदृढ़ करने और भारतीयों को ईसाई बनाने का षड्यन्त्र था। इस पुस्तक में सिद्ध किया गया है कि वेद में व्यवहृत आर्य, दास तथा दस्यु शब्द जाति-वाचक नहीं हैं, प्रत्युत गुण-वाचक हैं। जब आदिवासी कोई पृथक् जाति ही नहीं थी, तो आर्यों का उनसे युद्ध करना स्वयं खण्डित हो जाता है।

पुस्तक को आरम्भ करने से पूर्व आर्य, दास तथा दस्यु शब्दों की व्याकरण द्वारा व्युत्पत्ति दर्शाई गई है। व्याकरण के ज्ञान से शून्य इन ज्ञानलव-दुर्विदग्ध लेखकों ने अर्थों के अनर्थ किये हैं। वेद के मर्म को समझने के लिए शिक्षा, कल्प, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष तथा व्याकरण का ज्ञान होना आवश्यक है। महाभाष्य में इन ६ अङ्गों में भी व्याकरण को प्रधानता[१] दी गई है। निरुक्त और व्याकरण, वेद को समझने के लिये नेत्रों के समान हैं।

---

१. प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्। प्रधाने च कृतो यत्नः फलवान् भवति ॥ महा० अ० १, पा० १, आ० १॥

आर्य शब्द की व्युत्पत्ति

भ्वादिगण पठित ऋ गतौ धातु से "अचो यत्" (अ० ३।१।९७) सूत्र से भाव-कर्म अर्थ में अजन्त धातुओं से सामान्य रूप से यत् कृत्य (कृत्) प्रत्यय का विधान किया है। "अचो यत्" सूत्र का अपवाद है—"ऋहलोर्ण्यत्" (अ० ३।१।१२४) सूत्र। इससे ऋकारान्तों से यत् के स्थान में ण्यत् प्रत्यय का विधान है—जैसे **कार्यः कार्यम्, हार्यः हार्यम्**। इसी प्रकार ऋ धातु से भी ण्यत् होता है। परन्तु "ऋहलोर्ण्यत्" सूत्र का अपवाद है—"**अर्यः स्वामिवैश्ययोः**" (अ० ३।१।१०३) इस सूत्र से स्वामी और वेश्य अर्थ में अर्य पद की सिद्धि की है, परन्तु स्वामी और वैश्य अर्थ मे अन्यत्र भाव-कर्म-विषयक अर्थ में 'ऋहलोर्ण्यत्' से ण्यत् होकर 'आर्य' बनता है।

इस आर्य शब्द का अर्थ होगा—**गमनीयः प्रापणीयः, अभिगमनीयः अभिगन्तव्यः**। जहां आर्य शब्द का इन्द्र-सोम-ज्योति-व्रत-पूजा आदि के विशेषण रूप में अथवा अनार्य के विलोम में प्रयोग होगा, वहां आर्य=गमनीय-प्रापणीय का सामान्य अर्थ श्रेष्ठ होगा, परन्तु जहां यह वृत्र=शत्रु आदि के विशेषण रूप में प्रयुक्त होगा, वहां इसका अर्थ अभिगमनीयः अभिगन्तव्यः चढ़ाई के योग्य बलवान् होगा।

स्वामी अर्थ में व्युत्पन्न अर्य शब्द जो ईश्वर का भी वाचक है[1], उससे "तस्यापत्यम्" (अ० ४।१।९२) सूत्र से तद्धित अण्

---

१. निघण्टु २।२२॥

प्रत्यय होकर निष्पन्न 'आर्य' शब्द का अर्थ होगा—अर्यस्य स्वामिनः ईश्वरस्य पुत्रः, जैसा कि निरुक्तकार ने "आर्यः ईश्वरपुत्रः" (निरुक्त ६।२६) व्याख्या में दर्शाया है।

दूसरा 'आर्य' शब्द "तस्येदम्" (अ० ४।३।१२०) सूत्र से अर्य से अण् प्रत्यय होकर बनता है। इसका अर्थ होगा—**अर्यस्य स्वामिनः ईश्वरस्य वैश्यस्य वा इदम्**=स्वामी, ईश्वर वा वैश्य का अपना स्व धन=ऐश्वर्य आदि।

उपसंहार

इसका निष्कर्ष यह है कि प्रसंगवश—

(१) आर्य शब्द जहां विशेषण रूप में प्रयुक्त होगा, वहां कृदन्त आर्य शब्द होगा। उसका विशेष्य के अनुसार श्रेष्ठ अथवा बलवान् अर्थ होगा।

(२) जहां आर्य शब्द विशेष्य रूप में प्रयुक्त होगा, वहां ईश्वरस्य पुत्रः अर्थवाला तद्धितान्त आर्य शब्द समझना चाहिए।

(३) जहां ईश्वर के ऐश्वर्य का स्वामी या वैश्य के धन सम्पत्ति के रूप में प्रयुक्त होगा, वहां 'तस्येदम्' अर्थवाला आर्य शब्द होगा।

विशेष—तीनों अर्थों में प्रयुक्त आर्य शब्द ऋग्वेद में आद्युदात्त ही है।

हम पूर्व लिख चुके हैं कि अर्य शब्द वेद में ईश्वर-वाचक है। उसके निदर्शनार्थ एक मन्त्र उपस्थित करते हैं—

यो अर्यो मर्तभोजनं पराददाति दाशुषे। इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः॥

ऋक् १।८१।६॥

अर्थ—जो (अर्यः) ईश्वर दानी पुरुषों को मनुष्यों के भोग्य पदार्थ प्रदान करता है, वह इन्द्र हमें भी भोग्य पदार्थ देवे। हे इन्द्र! हम सबको बांटकर ये पदार्थ दो। तेरे पास न समाप्त होने वाला भण्डार है, हम तुम्हारे ऐश्वर्य का भोग करें, अर्थात् उस धन का हमें भी भागी बना।

यास्काचार्य-निर्मित निघण्टु २।२२ में 'अर्य' शब्द ईश्वर नामों में पढ़ा है—राष्ट्री। अर्यः। नियुत्वान्। इन इनः। इति चत्वारि ईश्वरनामानि।

निरुक्त ६।२६ में ऋक् १।११७।२१—

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥

मन्त्र की व्याख्या में आर्य-पद की व्याख्या करते हुए यास्काचार्य ने लिखा है—'आर्यः ईश्वरपुत्रः।' अर्थात् 'आर्य' ईश्वर के पुत्र का नाम है।

पाणिनि ने तद्धित-प्रकरण के तस्यापत्यम् (अ० ४।१।९२) सूत्र से और 'तस्येदम्' (अ० ४।१।१२०) सूत्र से आर्यपद की सिद्धि की है, और यास्काचार्य ने 'आर्य' शब्द को ईश्वरपुत्र के अर्थ में माना है।

'ईश्वर' शब्द 'ईश ऐश्वर्ये' धातु से बनता है। अतः 'ईश्वर' पद से परमेश्वर अर्थ से भिन्न ऐश्वर्यवान्, उत्तम गुणयुक्त, श्रेष्ठ, सद्गुणपरिपूर्ण अर्थों का भी ग्रहण होता है।

आर्य शब्द के कृदन्त और तद्धितान्त रूप का वेद में प्रयोग

हम पूर्व कह चुके हैं कि आर्य शब्द कृत् ण्यत् और तद्धित अण् प्रत्यय से निष्पन्न होता है। हम यहां दोनों प्रकार के आर्य शब्दों का वेद में प्रयोग दर्शाते हैं—

भरद्वाज बार्हस्पत्य दृष्ट ऋग्वेद ६।२५।२ मन्त्र है—

आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः॥

भरद्वाज बार्हस्पत्य प्रार्थना करता है—

अर्थ—हे इन्द्र ! शत्रु सेनाओं को नष्ट करने वाली हमारी सेना की रक्षा करते हुए संग्राम में शत्रु के कोप को नष्ट कर। हमारी स्तुतियों से हे इन्द्र ! हमारा मुकाबला करने वाली सर्वत्र विद्यमान (दासीः विशः) दस्युओं की सेनाओं का आर्य के लिए वध कर[१]।

वही भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि ऋ० ६।२२।१० में प्रार्थना करता है—

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि॥

अर्थ—हे इन्द्र ! शत्रुओं के नाश के लिए न नष्ट होने वाली, बड़ी, निश्चित कल्याण करने वाली शक्ति हमें प्रदान करो। हे वज्रधारी इन्द्र ! जिस शक्ति से मानवीय[१] दास अर्थात् अल्पशक्ति वाले शत्रु तथा 'आर्य' अर्थात् बलवान् शत्रु को हिंसित करते हो।

ऋक् ६।६०।६ मन्त्र-द्रष्टा भी भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि है। इसमें ऋषि इन्द्र और अग्नि की स्तुति करता है—

---

१. 'अवतारीः'—यहां अव पूर्वक तिर् वध (नाश) अर्थ में है। निघण्टु—१।१९ में अवतिरति वधार्थक आख्यातों में पढ़ा है।

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती ।
हतो विश्वा अप द्विषः ॥

अर्थ—हे सद्व्यवहारों के पालक इन्द्र तथा अग्ने ! आप दोनों दास अर्थात् उपक्षीण (कमजोर) शत्रु, आर्य अर्थात् बलवान् शत्रु, इन दोनों का हनन करते हो। तुम्हीं ने सब द्वेषियों का हनन किया है।

भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषि को इन तीनों मन्त्रों के दर्शन में से ऋक् ६।२५।२ मन्त्र में 'आर्य' पद का श्रेष्ठ अर्थ में दर्शन हुआ, और ऋक् ६।२२।१० तथा ऋक् ६।६०।६ इन दोनों मन्त्रों में उन्हें 'आर्य' पद का आक्रमण करने योग्य बलवान् शत्रु के अर्थ में दर्शन हुआ।

वेदों के अनन्तर जब व्याकरण के नियम बनने लगे तो प्रसिद्ध वैयाकरण मुनि पाणिनि ने आर्य पद के लिए तद्धित और कृत् दो नियम बनाए। 'तस्येदम्' और 'तस्यापत्यम्' सूत्रों से 'अर्य' से 'अण्' प्रत्यय लगाकर 'आर्य' पद की सिद्धि की, और कृदन्त में ऋ धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय लगाकर **आर्यः= अरणीयः गमनीयः प्रापणीयः** अर्थयुक्त सिद्ध किया।

उद्गीथ और सायण

सायण से पूर्व का भाष्यकार उद्गीथ तथा सायणाचार्य इन दोनों ने ऋक् १०।८३।१ में कृदन्त का रूप स्वीकार किया है। सायणाचार्य ने ऋक् १०।६९।६ तथा ऋक् १०।१०२।३ सख्या वाले मन्त्रों में कृदन्त का रूप ही अपने भाष्य में माना है।

दास तथा दस्यु शब्दों की व्युत्पत्तियां

'दास' शब्द की व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति

दास शब्द दसु उपक्षये दिवादिगणीय, दासृ दाने भ्वादिगणीय, उपक्षयार्थक दसु के णिजन्त रूप, और चुरादिगणीय दंशन या भाषणार्थक दसि=दंस् णिजन्त धातु से निष्पन्न होता है। इस प्रकार दास शब्द की चार प्रकृतियां हैं—उपक्षयार्थक दसु, दानार्थक दासृ, णिजन्त उपक्षयार्थक दसु और दसि=दंस् णिजन्त धातु।

(१) दसु उपक्षये धातु से 'दास' शब्द कर्म में 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' (अ० ३।३।१९) सूत्र के नियम से घञ् प्रत्यय होकर बनता है। इसका अर्थ होगा—दस्यते उपक्षीयते इति दासः अर्थात् जो साधारण प्रयत्न से क्षीण किया जा सके, ऐसा साधारण व्यक्ति। इस अर्थ में इसका प्रयोग वृत्र=शत्रु के विशेषण रूप में आता है।

(२) दासृ दाने धातु से कर्ता अर्थ में 'अजपि सर्वधातुभ्यः' (वा० ३।१।१३४) से अच् प्रत्यय होकर भी 'दास' शब्द बनता है। इसका अर्थ होगा—दासति दासते वा यः सः अर्थात् दाता=दान करने वाला।

इसी दानार्थक दासृ धातु से 'कृल्ल्युटो बहुलम्' (वा० ३।३।११३) के नियम से जब 'अच्' या 'घञ्' प्रत्यय संप्रदान अर्थ में होता है, तब इसका अर्थ होता है—दासति दासते वा

अस्मै अर्थात् जिसके लिये दिया जाय। इस 'दास' का अर्थ होता है—भृत्य-किंकर-सेवक आदि।

(३) जब क्षयार्थक दसु धातु के णिजन्त रूप से कर्ता में 'अजपि सर्वधातुभ्यः' (वा० ३।१।१३४) से 'अच्' प्रत्यय होता है, तब इसका अर्थ होगा—दासयति यः स दासः[1] अर्थात् जो यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों वा प्रजा आदि को क्षीण करे, वह दास अर्थात् अनार्य व्यक्ति।

(४) जब "दंसेष्टटनौ न आ च" इस उणादि (५।१०) सूत्र से कर्ता में ट या टन् प्रत्यय दंशन और भाषणार्थक दसि णिजन्त से होता है, तब अर्थ होता है—दंसयति दशति भाषते वा यः स दासः अर्थात् जो काटने=हिंसा करने तथा भाषण करने वाला है वह दास है। तब यह हिंसक या वाचाल व्यक्ति के लिये प्रयुक्त होता है।

दास शब्द के दो वैदिक रूप

दास शब्द स्वर की दृष्टि से आद्युदात्त (दास) और अन्तोदात्त (दास) दो प्रकार का उपलब्ध होता है। आद्युदात्त दास शब्द भाव कर्म में 'घञ्' प्रत्यय होकर बनता है। प्रत्यय के ञित् होने से (अ० ६।१।१९१) से आद्युदात्तत्व प्राप्त होता है। उसको बाधकर कर्षात्वतो घञोऽन्तोदात्तः (अ० ६।१।१५३) से अन्तोदात्तत्व की प्राप्ति होती है, उसको बाधकर 'वृषादीनां च' (अ० ६।१।१९७) के आकृतिगणत्व से पुनः आद्युदात्त होता है। दस्यते इति दासः=जिसको मारा जाये।

कर्त्ता (दासयति) अर्थ में अच् प्रत्यय होने से चित् स्वर से अन्तोदात्त स्वर होता है। दासयतीति दासः=जो मारता है

१. दासो दस्यतेः, उपदासयति कर्माणि। निरुक्त २।१७॥

अर्थात् हिंसक। जब चुरादिगणस्थ दंशन और भाषणार्थक दसि=दंस् धातु से ट टन् प्रत्यय होता है तब 'ट' प्रत्ययान्त प्रयय-स्वर 'आद्युदात्तश्च' (अ० ३।१।३) के नियम से अन्तोदात्त होता है और जब 'टन्' प्रत्यय होता है तव प्रत्यय के नित् होने से (अ० ६।१।१९१) से आद्युदात्त स्वर उपपन्न होता है।

'दस्यु' शब्द की व्युत्पत्ति

दस्यु शब्द 'दसु उपक्षये' धातु से 'यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच्' इस उणादि (३।२०) सूत्र से युच प्रत्यय होकर सिद्ध होता है। दस्यति नाशयति यः स दस्युः अर्थात् जो नाश करता है वह दस्यु है।

यास्काचार्य ने 'प्र नू महित्वम्' (ऋक् १।५९।६) मन्त्र की व्याख्या में दस्यु शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है—

दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थाद् उपदस्यन्त्यस्मिन् रसा उपदासयति कर्माणि ॥ निरुक्त ७।२३ ॥

अर्थात् अनावृष्टिकाल में सब ओषधियों के रस क्षीण करने वाला होने से यह दस्यु है। कर्मों का नाश करने से भी इसे दस्यु कहा गया हैं।

पाणिनि मुनि और यास्काचार्य दोनों ने 'दसु' धातु का 'क्षय' अर्थ दर्शाया है, परन्तु यास्काचार्य ने 'रसों के शोषण करने' से भी इसे दस्यु कहा है। शोषण और क्षय दोनों का वास्तव में भाव एक ही है, परन्तु मन्त्र में पठित शम्बर नामक मेघ से दस्यु नामक मेघ की पृथक्ता बताने के लिए उपदस्यन्त्यस्मिन् रसाः यह व्युत्पत्ति दर्शाई है। अस्मिन् यह निमित्तार्थ

में सप्तमी विभक्ति है[1]। जिसके निमित्त से ओषधि वनस्पतियों के रस क्षीण हो जाते हैं, यह अवर्षक मेघ का नाम है।

मन्त्र में पठित शम्बर मेघ नामों (नि० १।१०) में पढ़ा है, उससे भेद दर्शाना अभीष्ट है। शम्बर शीघ्रगामी मेघ का नाम है. यह ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट में बतायेंगे। शीघ्रगामी मेघ भी या तो बरसते नहीं या अल्प वर्षा करने वाले होने से प्रजा-पीड़क ही होते हैं, अतः वह भी इन्द्र द्वारा बध्य कहा गया है।

दस्यु शब्द वेद में सर्वत्र आद्युदात्त है। ऋग्वेद ८।५५।१; ८।५६।१ में 'दस्यवे वृक' में सर्वानुदात्तत्व मिलता है, वह अ० २।१।२ तथा अ० ८।१।१९ के नियमानुसार सांहतिक स्वर है।

---

१. द्र० चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
काशिका २।३।३६ में उद्धृत।

आर्य दास दस्यु शब्दों का वेद में मनुष्यों तथा जड़पदार्थों के लिए प्रयोग

आर्य शब्द का विविध अर्थों में प्रयोग

१. **श्रेष्ठ व्यक्ति के लिए**—ऋग्वेद १।१०३।३; ऋ० १।१३०।८ तथा १०।४९।३ आदि मन्त्रों में आर्य शब्द श्रेष्ठ तथा उत्तम गुणयुक्त व्यक्ति के लिए प्रयुक्त हुआ है।[1]

२. **इन्द्र का विशेषण**—ऋ० ५।३४।६ तथा ऋ० १०।१३८।३ में आर्य शब्द का प्रयोग इन्द्र के विशेषण रूप में हुआ है।[2]

३. **सोम का विशेषण**—ऋ० ९।६३।५ में आर्य शब्द सोम के विशेषण रूप में आया है।[3]

४. **ज्योति का विशेषण**—ऋ० १०।४३।४ में आर्य शब्द ज्योति के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है।[4]

---

१. दस्यवे हेतिमार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ।। १।१०३।३ ।।
यजमानमार्यं प्रावत् ।। १।१३०।८ ।।
न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ।।१०।४९।३ ।।

२. यथावशं नयति दासमार्यः ।। ५।३४।६।। ऐन्द्रं सूक्तम् ।
विदद् दासाय प्रतिमानमार्यः ।। १०।१३८।३ ।। ऐन्द्रं सूक्तम् ।

३. कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।। ९।६३।५।। सौम्यं सूक्तम् ।

४. ज्योतिरार्यम् ।। १०।४३।४।।

५. व्रत का विशेषण—ऋ० १०।६५।११ में आर्य शब्द व्रतों के विशेषण रूप में व्यवहृत हुआ है।[1]

६. प्रजा का विशेषण—ऋ० ७।३३।७ में आर्य शब्द प्रजा के विशेषण रूप में आया है।[2]

७. वर्ण का विशेषण—ऋ० ३।३४।६ में आर्य शब्द वर्ण का विशेषण है—**आर्यं वर्णम्** ।

वर्ण शब्द का मूल अर्थ है—**व्रियते स्वीक्रीयते इति वर्णः** अर्थात् जो स्वीकार किया जावे **भाव वा कर्म** । अतः **आर्य वर्ण** का अर्थ होगा—श्रेष्ठ भाव वा कर्म ।

वर्ण शब्द **भाव**=वृत्ति अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। यथा **उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष** । ऋ० १।१७६।६।।

शब्दस्तोममहानिधि कोश में वर्ण का अर्थ गुण भी किया है। अतः ऋ० ३।३४।६ में पठित **आर्यं वर्णम्** का अर्थ आर्य भाव, आर्य कर्म तथा आर्य गुण है।

दास शब्द का विविध रूपों में प्रयोग

१. नमुचि (मेघ) का विशेषण—ऋक् ५।३०।७ में दास शब्द नमुचि नामक मेघ के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है।[3]

२ शम्बर (मेघ) का विशेषण—ऋक् ६।२६।५ में दास शब्द शम्बर नामक मेघ के विशेषण रूप में व्यवहृत हुआ है।[4]

३. शुष्ण (मेघ) का विशेषण—ऋक् ७।१६।२ में दास शब्द शुष्ण नामक मेघ के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[5]

---

१. आर्या व्रता विसृजन्तः । २. तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
३. अत्रा दासस्य नमुचेः । ४. अव गिरेर्दासं शम्बरं हन् ।
५. दासं यच्छुष्णं कुयवम् ।

नमुचि, शम्बर और शुष्ण मेघ-विशेषों के नाम हैं। इसके लिए ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट देखें।

४. उपक्षीण (=बल रहित) शत्रु के लिये—दास और आर्य शब्द जब शत्रु के रूप में या उनके विशेषण रूप में व्यवहृत होते हैं, तब दास शब्द उपक्षीण=बल-रहित शत्रु और आर्य बलवान् शत्रु के लिये प्रयुक्त होता है। यथा ऋग्वेद १०।८३।१ में—साह्याम दासमार्यं त्वया युजा।

५. अनार्य के लिये—ऋग्वेद १०।८६।१९ में दास शब्द अनार्य के लिये प्रयुक्त हुआ है[1]

इसी प्रकार ऋक् १।५१।८ में दस्यु शब्द आर्य के विलोम अर्थ में आया है।[2]

६. दास और दस्यु शब्द ऋक् १०।२२।८ में अज्ञानी, अकर्मा, मानवीय-व्यवहार-शून्य व्यक्ति के लिये प्रयुक्त है।[3]

७. दासी शब्द विशः (प्रजाः) के विशेषण रूप में—ऋग्वेद ६।२५।२ में दासी शब्द प्रजा के विशेषण रूप में व्यवहृत है।[4]

इसी प्रकार ऋक् १०।१४८।२ तथा ऋक् २।११।४ में भी दासी शब्द विशः (प्रजाः) के विशेषण रूप में प्रयुक्त है[5]।

८. वर्ण के विशेषण रूप में—जैसे ऋक् ३।३४।९ में आर्य शब्द वर्ण के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है,[6] उसी प्रकार

---

१. विचिन्वन् दासमार्यम्। २. विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः।
३. अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।
त्वं तस्या मित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय॥
४. आर्याय विशोऽव तारीर्दासीः।
५. (उभयत्र) दासीर्विशः सूर्येण सह्याः। ६. द्र० पूर्वपृष्ठ १५।

ऋक् २।१२।४ में दास शब्द भी वर्ण के विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ है।[1] अतः यहां भी दास वर्ण शब्द का अर्थ कुत्सित भाव, वृत्ति तथा गुण है, जातिवाचक नहीं।

९. भृत्य अर्थ में—ऋक् ७।८६।७ तथा ऋक् १।९२।८ में दास शब्द भृत्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2] भृत्यार्थक दास शब्द दासृ दाने धातु से निष्पन्न होता है, यह हम पूर्व कह चुके हैं।[3]

दस्यु शब्द का विविध रूपों में प्रयोग

१. आर्य के विलोम अर्थ में—ऋक् १।५१।८ में दस्यु शब्द आर्य के विलोम अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[4]

२. उत्तम-कर्म-हीन व्यक्ति के लिये—ऋक् ७।५।६ में दस्यु शब्द उत्तम-कर्म-हीन दुष्ट व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है।[5]

३. ऋग्वेद १०।२२।८ में दस्यु शब्द अज्ञानी, अव्रती, मानवीय-व्यवहार-शून्य व्यक्ति के लिये व्यवहृत हुआ है।[6]

४. दस्यु शब्द ऋक् १।५९।६ में मेघ के अर्थ में आया है।[7] ऋक् ६।२६।५ में दास शब्द भी शम्बर के विशेषण रूप

---

१. दासं वर्णमधरं गुहाकः।

२. क्रमशः—अरं दासो न मीळ्हुषे कराणि।
दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम्।

३. द्र० पूर्व पृष्ठ १०-११।

४. वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवः।

५. त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आजे।

६. द्र० पूर्व पृष्ठ १६ टि० ३।

७. वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वां अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत्।

में प्रयुक्त हुआ है, यह पूर्व कहा जा चुका है।[1] निरुक्त ७।२३ में भी इसे मेघ का विशेषण माना है।

५. दस्यु का अनास् विशेषण—ऋक् ५।२९।१० में दस्यून् का विशेषण अनासः प्रयुक्त हुआ है।[2] 'अनास्' शब्द णासृ (=नास्) शब्दे धातु से कर्ता में क्विप् प्रत्यय से निष्पन्न होता है : नासन्त इति नासः, न नासन्ते, नास्ति वा नाः=शब्दो येषु ते अनासः, अर्थात् जो शब्द नहीं करते अथवा जिनमें शब्द नहीं है, अर्थात् गर्जना-रहित मूक मेघ।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि दस्यु शब्द मनुष्य और अचेतन पदार्थों के लिये जहां भी प्रयुक्त हुआ है, वहां सर्वत्र उपक्षयकारी=विनाशकारी सामान्य अर्थ ही समझना चाहिये।

१. पूर्व पृष्ठ १५ टि० ४। २. अनासो दस्यूँरमृणो वधेन।

आदिवासियों का स्वरूप और धर्म
तथा
उसकी समीक्षा

चपटी नाकवाले आदिवासी

पाश्चात्य मत—वैदिक इण्डैक्स (वैदिक कोष) वालों ने लिखा है कि [दासों को] ऋक् ५।२९।१० में **अनास** कहा है, जिससे पता चलता है कि वे वस्तुतः मनुष्य थे। इस व्याख्या से चपटी नाक वाले द्राविड़ आदिवासियों को लिया जा सकता है। ऋक् ५।२९।१० मन्त्र में ही **मृध्रवाच्** भी कहा गया है। इसका अर्थ यह है—'द्वेष पूर्ण वाणी वाले।' मृध्रवाच् से दूसरा अर्थ लिया गया है—'लड़ाई के बोल बोलने वाले।'

यह वाक्य हमने मैक्डौनल और कीथ द्वारा रचित 'वैदिक इण्डैक्स' (वैदिक कोष) पुस्तक से उद्धृत किए हैं।

समीक्षा

अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः।

ऋक् ५।२९।१०॥

अर्थ—हे इन्द्र! तूने 'अनास्' अर्थात् (मूक मेघ) और 'मृध्रवाच्' (हिंसित गर्जना करने वाले मेघ) दस्यु अर्थात् विनाशकारी मेघों को संग्राम में वज्र द्वारा मारा।

इस सूक्त का देवता इन्द्र है। इस सूक्त में भी इन्द्र (विद्युत्) और मेघ का प्राकृतिक संघर्ष दर्शाया गया है। इसी सूक्त के ६वें तथा ११वें मन्त्र में 'शुष्ण' और 'पिप्रु' नामक मेघों का विदारण करना भी लिखा हुआ है।

अनास् और मृध्रवाच् के अर्थ--इस मन्त्र में 'नास्' का अर्थ नासिका नहीं, प्रत्युत 'नास्' का अर्थ है—शब्द करना। णासृ शब्दे भ्वादिगण की धातु से 'नासते शब्दं करोति इति नाः (नास्)'—अर्थात् जो शब्द करता है वह 'नास्' है। 'न शब्दं करोति इति अनाः (अनास्)।' अर्थात् जो मेघ शब्द नहीं करते वे 'अनास्' अर्थात् 'मूकमेघ'।

विशेष--मन्त्र में 'अनासः' पद 'दस्यून्' का विशेषण है और 'ना' उदात्त है। यदि इसका अर्थ 'न विद्यते नासिका यस्य' बहुव्रीहि समास करके चपटी नाक वाले' अर्थ किया जाय तो '**अञ्नासिकायाः नसं चास्थूलात्**' (अ० ५।४।११९) के नियम से 'नस्' आदेश और 'अच्' प्रत्यय होकर **अनसः** अकारान्त **अनस** शब्द बनेगा। उसका द्वितीया के बहुवचन का रूप अनसान् होगा, न कि मन्त्र-पठित **अनासः**। इतना ही नहीं, यदि समासान्त 'अच्' प्रत्यय के अभाव की कल्पना कर लें तो भी द्वितीया के बहुवचन में **अनसः** रूप होगा न कि **अनासः**।

इससे स्पष्ट है कि पाश्चात्य लेखकों ने अपने पक्ष की सिद्धि के लिये व्याकरण-शास्त्र-विरुद्ध कितनी भ्रान्त-कल्पनायें की हैं। **णासृ शब्दे** धातु से ऋजुमार्ग से **अनासः** पद द्वितीया के बहुवचन में उपपन्न हो जाता है। इसमें किसी प्रकार की कल्पना नहीं करनी पड़ती और प्रकरण भी संगत हो जाता है।

मृध्रवाचः—मृध्रवाच् का अर्थ है—हिंसित शब्द (घोर गर्जना) करने वाले मेघ, अर्थात् जो घनघोर गर्जना तो करते

हैं परन्तु बरसते नहीं। ऋग्वेद ५।३२।८ में मृध्रवाच् शब्द मेघ के विशेषण में आया है—अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम्। विविच्यमान (ऋक् ५।२९।१०) मन्त्र में 'अनास्' और 'मृध्रवाच्' दोनों पद 'दस्यु' पद के विशेषण हैं। 'दस्यु' का अर्थ है—विनाशकारी मेघ। जो गर्जना रहित अथवा वृथा गर्जना करने वाले, जल न बरसा कर संसार को नाश करने हारे हैं, वे 'दस्यु' हैं। इस प्रकार के मेघों को 'चपटी नाक वाले' तथा 'लड़ाई के बोल बोलने वाले' आदिवासी मनुष्य थे, ऐसा लिखना अज्ञानता अथवा पक्षपात सिद्ध करता है।

टिप्पणी—वेद में 'दस्यु' मेघ के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। इसके लिए नीचे वेद का ही प्रमाण प्रस्तुत किया जाता है—

वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत्।
ऋक् १।५९।६॥

इसी मन्त्र की व्याख्या में निरुक्त ७।२३ में यास्काचार्य ने भी दस्यु को उपक्षयकारीं मेघ लिखा है।

मन्त्र में पठित 'काष्ठा' शब्द जल का वाचक है। निरुक्तकार यास्क ने ऋग्वेद १।३२।१० की व्याख्या में लिखा है—आपो हि काष्ठा उच्यन्ते (नि० २।१६)।

जिस प्रकार अनास् और मृध्रवाच् पदों से मूक और वृथा गर्जने वाले मेघों का ऋक् ५।२९।१० मन्त्र में ग्रहण किया गया है, उसी प्रकार ऋग्वेद के १।१००।१८ मन्त्र में दस्यु और शिम्यु मेघों का वर्णन आया है। दस्यु वह मेघ है जो विनाशकारी और प्रलयकारी है, और शिम्यु वे मेघ हैं जो शान्तरूप से अपने वृष्टि-व्यापार में निरत रहते हैं। शिमि शब्द निघण्टु २।१ में कर्म नामों में पढ़ा गया है। मन्त्र इस प्रकार है—

दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।

मन्त्रार्थ—दस्यु और शिम्यु मेघों को (पृथिव्यां) अन्तरिक्ष में (पुरुहूत) इन्द्र ने (शर्वा) वज्र से (नि बर्हीत्) हनन किया । 'पृथिवी' पद निघण्टु १।३ में अन्तरिक्ष नामों में पढ़ा गया है ।

कृष्णवर्ण के आदिवासी

पाश्चात्य मत—वज्रपाणि इन्द्र को जो कि युद्ध में अन्तरिक्षस्थ दानवों को छिन्न-भिन्न करते हैं, योद्धा लोग अनवरत आमन्त्रित करते हैं । युद्ध के प्रमुख देवता होने के नाते उन्हें भौम शत्रुओं के साथ युद्ध करने वाले आर्यों के सहायक के रूप में अन्य सभी देवताओं की अपेक्षा कहीं अधिक बार आमन्त्रित किया गया है । वे आर्य वर्ण के रखवाले और काले वर्ण के उपदस्ता हैं । उन्होंने ५० हजार कृष्ण-वर्णों का अपाकरण किया और उनके दुर्गों को छेद-भेद डाला । उन्होंने दस्युओं को आर्यों के सम्मुख झुकाया और आर्यों को उन्होंने भूमि दी । सप्त-सिन्धु में वे दस्यु के शस्त्रों को आर्यों के सम्मुख पराभूत करते हैं ।—(वैदिक माईथौलोजी) वैदिक देवशास्त्र पृ० सं० १५१, १५२ ।

इन्द्र के द्वारा दासों या दस्युओं पर पाई विजय के आंशिक संकेत जहां-तहां मिलते हैं । **मौलिक** रूप में तो यह लोग मानवीय शत्रु हैं, जिनका **रंग काला** है, जो **अनास** हैं, **अदेव** तथा **अयज्वा** हैं । यद्यपि इन्द्र के द्वारा पाई गई व्यक्तिगत दस्यु-विजय के वर्णनों में गाथात्मक तत्त्व घुल मिल कर अस्पष्ट से हो गये हैं, तथापि इन गाथाओं का आधार पार्थिव एवं मानवीय है । क्योंकि जहां एक ओर वृत्र का वध मनुष्य-सामान्य के हितार्थ दिखाया गया है, वहां जिनके लिये या जिनके साथ

इन्द्र ने दास या दासों को पराभूत किया, वे खुले मानव व्यक्ति हैं। देखो—वैदिक देवशास्त्र पृ० १५५, १५६।

मैकडौनल ने लिखा है—The term Das, Dasyu properly the name of the dark aborigines. 'दास दस्यु काले रंग के आदिवासी ही हैं।'

ग्रिफथ ने ऋग्वेद का अंग्रेजी अनुवाद करते हुए १।१०।१ मन्त्र की टिप्पणी में लिखा है—

The dusky brood : The dark aborigines who opposed the Aryans. 'काले वर्ण के आदिवासी जो आर्यों का विरोध करते थे।'

पाश्चात्य मत वालों ने ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों के द्वारा यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि भारत के आदिवासियों की त्वचा कृष्ण थी। वे मन्त्र ये हैं—

यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना। १।१०१।१॥
त्वचं कृष्णामरन्धयत्। १।१३०।८॥
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः। २।२०।७॥
पञ्चाशत् कृष्णा नि वपः। ४।१६।१३॥

समीक्षा

पाश्चात्य मत वालों ने इन मन्त्रों से यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि आदिवासी काली त्वचा वाले थे। उनकी यह कल्पना निराधार है, क्योंकि ये मन्त्र मनुष्य सम्बन्धी हैं ही नहीं।

प्रथम मन्त्र १।१०१।१ में जो **कृष्णगर्भा.**[1] पद आया है, वह मेघ की काली घटा सम्बन्धो है। इसका अर्थ है—**कृष्णवर्णो मेघो गर्भे यासु घटासु ताः कृष्णगर्भाः।** इसी सूक्त के दूसरे मन्त्र में भी शुष्ण और शम्बर नामक मेघों का वर्णन है। यह सारा प्रकरण ही मेघों का है। अतः कृष्णवर्ण मेघ जिन घटाओं के गर्भ में हैं, वे घटायें ही यहां 'कृष्णगर्भा' कही गई हैं। कृष्ण शब्द को देखकर कृष्णवर्ण के आदिवासी थे, यह कपोल-कल्पना नहीं तो और क्या है? ऋक् ७।१७।१४ में कृष्ण का अर्थ सायणाचार्य ने भी **कृष्णवर्णो मेघः** किया है।

दूसरा मन्त्र—**त्वचं कृष्णामरन्धयत्।** (ऋक् १।१३०।८) इस का अर्थ किया गया है—'कृष्णत्वचा वाले असुरों' को मार कर। यहां भी कृष्णत्वचा वाला कोई आदिवासी नहीं है। यहां इन्द्र का कृष्णवर्ण मेघ के साथ युद्ध है। इससे पूर्व के (संख्या ७ के) मन्त्र में जो प्रकरण चल रहा है, उसमें शम्बर नामक मेघ का वर्णन है, जिसके ९९ पुर अर्थात् घटाओं को इन्द्र तोड़ता है। इस (८वें) मन्त्र में 'अर्शसान' तथा 'ततृषाण' दो प्रकार के मेघों का ही वर्णन है। इस प्रकार इन्द्र कृष्णवर्ण मेघों को हिंसित करता है। इसलिये जान-बूझ कर अथवा अज्ञान से यह लिख देना कि 'यहां कृष्णवर्ण आदिवासियों का वर्णन है' सर्वथा निराधार है। इस मन्त्र की व्याख्या में वेंकट माधव ने 'त्वचं कृष्णां०' का अर्थ किया—मेघं वशमनयत्।

तृतीय मन्त्र—२।२०।७ में **'कृष्णयोनीः'** पद को देख कर पाश्चात्य मत वालों को भ्रान्ति हुई है। इस मन्त्र में भी

---

१. **स्कन्दभाष्यम्**—वृष्टिलक्षणा आपः कृष्णगर्भाः कृष्णवर्णस्य मेघस्य गर्भभूतत्वात्।

कृष्ण-योनी: पद 'दासी'[1] का विशेषण है। यहां पर 'दासी:' का अर्थ है—मेघ की विनाशकारी घटायें। 'कृष्णा: (कृष्ण-वर्णा: मेघा:) योनीरासां ता: कृष्णयोन्य: दास्य:' अर्थात् कृष्ण-वर्ण मेघ जिन घटाओं का उत्पत्ति स्थान है वे घटायें 'कृष्ण-योनी:'[2] कहलाती हैं। इस मन्त्र में इन्द्र का विशेषण वृत्रहा और पुरन्दर हैं, जिनका अर्थ है—'इन्द्र वृत्र नामक मेघ का हनन करता है और मेघों के जो पुर=घटायें हैं उनका विदा-रण करने वाला है।' यह मन्त्र भी मेघ-सम्बन्धी है, पुरुष सम्बन्धी नहीं।

चतुर्थ मन्त्र—

पञ्चाशत्कृष्णा नि वप: सहस्रात्कं न पुरो जरिमा विदर्द:।

ऋक् ४।१६।१३॥

इसका अर्थ किया गया है—'हे इन्द्र! तुमने ५० हजार कृष्णवर्ण राक्षसों को मारा था।'

ग्रिफथ ने इसी मन्त्र की टिपणी में लिखा है कि—

'The swarthy fifty thousand : black Rakshasas, fie-nds or hostile aborigines.'

इस मन्त्र में भी इन्द्र और मेघ के युद्ध का वर्णन है। इसी मन्त्र में 'पिप्रु' तथा 'मृगय' नाम वाले मेघों का वर्णन है, जिन्हें इन्द्र अपने वज्र से फाड़ता है। ५० हजार कृष्णवर्ण के राक्षस आदिवासी नहीं हैं, प्रत्युत ये भी कृष्णवर्ण के मेघ ही हैं। ५० हजार शब्द कोई गणना की दृष्टि से तो नहीं दिए गये, प्रत्युत लोक भाषा में भी जैसे किसी को दो-चार बार बुलाने पर भीं

---

१. सायण—दासी उपक्षयितृरासुरी: सेना:।

२. वेङ्कट—कृष्णासुरो यासां योनिषु ता:।

कहा जाता है कि 'हजारों आवाजें देने पर भी तुम बोले नहीं' इसी प्रकार ५० हजार का अर्थ है—अनेक। कृष्णवर्ण के मेघों की घटाओं का इन्द्र अर्थात् वायु आवेष्टित विद्युत् ने विदारण किया।

इस प्रकार प्राकृत पदार्थों के स्थान पर 'भारतीय आदिवासी कृष्णवर्ण के थे' इस मत की कल्पना से पाश्चात्य मान्यता वालों की अज्ञता सिद्ध होती है।

शिश्नदेव (=लिङ्ग-पूजक) आदिवासी

पाश्चात्य मत—'वैदिक इण्डैक्स' के लेखकों ने लिखा है कि-

'सम्भवतः लिङ्ग-पूजक भी इन्हीं को कहा गया है— ऋग्वेद ७।२१।५; १०।९९।३।' यह ध्यान देने योग्य है कि आर्यों और दासों या दस्युओं के धर्म के अन्तर पर बल दिया गया है। (देखो, दास तथा दस्यु शब्द)।

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने कुछ मत अपनी पुस्तक में और भी दिये हैं, जिनसे यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि दस्यु—दास (आदिवासियों) को वेद में **अकर्मन्, अदेवयुः अब्रह्मन्, अयज्वन्, अयज्युः, अव्रतः, अन्यव्रतः** आदि आदि लिखा गया है। यह सिद्ध करते हैं कि आदिवासी कर्म-हीन तथा यज्ञ-विरोधी थे।

समीक्षा

पाश्चात्य मान्यता वालों की यह धारणा भी निराधार है- **शिश्नदेवाः** पद को लेकर इन्होंने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि आदिवासी शिश्न-देव अर्थात् लिङ्ग-पूजक थे। इनका यह अर्थ भ्रममूलक है। **शिश्नदेवाः** का अर्थ है—**शिश्नेन** उप-

स्थेन्द्रियेण दीव्यन्ति क्रीडन्ति इति शिश्नदेवाः, जो लिङ्ग इन्द्रिय से क्रीडा में रत हैं, इस प्रकार के व्यभिचारी कामी भोगी व्यक्तियों को वेद में 'शिश्नदेवाः' कहा गया है। पांच सहस्र वर्ष पूर्व के वेद-व्याख्याकार यास्काचार्य ने ७।२१।५ मन्त्र की व्याख्या में शिश्नदेवाः का अर्थ किया है—'अब्रह्मचर्याः।'

स उत्सहतां यो विषुणस्य जन्तोः विषमस्य मा शिश्नदेवा अब्रह्मचर्याः ।। निरुक्त ४।१९ ।।

वेद के ७।२१।५ तथा १०।९९।३ इन दो वेद-मन्त्रों में शिश्नदेव पद आया है। इन दोनों मन्त्रों में इन्द्र से यही प्रार्थना की गई है कि लोगों को पीड़ा पहुंचाने वाले, वञ्चक, कुटिल तथा शिश्नदेव=व्यभिचारी व्यक्ति हमारे यज्ञों को प्राप्त न हों अर्थात् दुष्ट व्यक्तियों का हमारे धार्मिक कार्यों में प्रवेश न हो। मन्त्र इस प्रकार है—

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ।
ऋक् ७।२१।५ ।।

मन्त्रार्थ—हे इन्द्र ! (यातवः) प्रजा को पीड़ित करने वाले हमें हिंसित न करें। हे बलवत्तम इन्द्र ! वञ्चक, दुष्ट पुरुष हमें प्रजाओं से पृथक् न करें। इन्द्र (विषुण) विषम अर्थात् कुटिल जीव को शासन करने में समर्थ है। (शिश्न-देवाः) व्यभिचारी हमारे यज्ञों को प्राप्त न होने पावें।

दूसरा मन्त्र—

स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवां अभि वर्पसा भूत् ।
ऋक् १०।९९।३ ।।

मन्त्रार्थ—अविचलित मार्गगामी, संग्राम की ओर प्रस्थान करने वाला, इन्द्र संग्राम में शत्रु-धनों को जीतने की इच्छा से (शिश्नदेवान्) व्यभिचारियों को हनन करता हुआ सौ द्वारों वाले शत्रु-पुरों में छिपे धन को बल से ले आता है।

ऋग्वेद के इन दो मन्त्रों में ही शिश्नदेव पद आया है। इन मन्त्रों में प्रकरण से शिश्नदेव का अर्थ व्यभिचारी व्यक्ति सिद्ध होता है। इस प्रकार सत्य अर्थों को छोड़कर मिथ्या अर्थ करना कि 'दस्यु लोग अर्थात् आदिवासी लिङ्ग-पूजक थे,' यह पक्षपात नहीं तो और क्या है ? यहां मन्त्रों में पूजा का प्रकरण भी नहीं है। इस प्रकार भ्रम-मूलक अर्थ करके वेद की प्रतिष्ठा को न्यून करने का यत्न किया गया है।

'वैदिक इण्डैक्स' के लेखकों ने अपनी पुस्तिका में यह भ्रान्ति उत्पन्न की है कि आर्य लोग आदिवासियों को दस्यु, अव्रत, अन्यव्रत, अयज्यु, अकर्मन् कहते थे। उनकी यह धारणा भी भ्रम-मूलक है। वास्तव में वेदों में जो भी व्यक्ति (दस्यु) विनाशकारी, (अव्रत) शुभ कर्मरहित, (अन्यव्रत) कुमार्ग की ओर ले जाने वाला, (अयज्यु) अयजनशील, (अकर्मन्) कर्महीन, (अमानुषः) मनुष्य व्यवहार-शून्य, (अदेवयुः) पापी, (अग्रथिनः) बकवादी, (कुसीदी) सूदखोर दुष्ट व्यापारी आदि-आदि दुर्गुण युक्त है, उसे दस्यु कहा गया है। यहां पर किसी जाति के सम्बन्ध में ये विशेषण नहीं आये हैं। इस प्रकार के दुर्गुणों से युक्त जो भी व्यक्ति है चाहे वह किसी भी समुदाय का हो, उसको दस्यु कहा जाता है। पाश्चात्य मान्यता वालों ने इस प्रकार की झूंठी और निरर्थक कल्पना करके सवर्ण हिन्दु और आदिवासियों में फूट डालने का बीजारोपण किया है। मन्त्र इस प्रकार है—

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम् ।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ।

ऋक् ८।७०।११ ॥

मन्त्रार्थ—(अन्यव्रत) कुमार्गगामी, (अमानुष) मनुष्य व्यवहार शून्य, अयजनशील पापी, दास अर्थात् विनाशकारी व्यक्ति को इन्द्र का सखा (पर्वतः) वज्र द्वारा सुख-स्थान से अवचालित करता है, और ऐसे दस्यु हिंसक पुरुष को अच्छे प्रकार नष्ट करने के लिये (पर्वतः) अर्थात् पहाड़ से नीचे फेंकते हैं।

प्रथम पर्वत का अर्थ वज्र है, इसके लिये देखो ऋक् ७। १०४।१६—'जहि रक्षसः पर्वतेन'। दूसरा पर्वत शब्द गिरि के अर्थों में आया है।

न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणीँरश्रद्धां अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ।

ऋक् ७।६।३ ॥

मन्त्रार्थ—यज्ञशून्य, वक्रवासी, कठोरभाषी, दुष्ट व्यापारी, कुसीद से जीवन व्यतीत करने वाले, अश्रद्धालु, अयजनशील, हानि पहुंचाने वाले दस्यु पुरुषों को अग्नि=परमेश्वर दूर भगावे।

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ।

ऋक् १०।२२।८ ॥

मन्त्रार्थ—हे इन्द्र ! जो 'अकर्मा' अर्थात् शुभ कर्मरहित है, जो 'अमन्तु' अज्ञानी, कुछ नहीं मानता, 'अन्यव्रत' शास्त्रोक्त व्रतों से रहित तथा जो मनुष्य-व्यवहार शून्य अर्थात् असुर-प्रकृति पुरुष है, इस प्रकार के 'दस्यु' अर्थात् उपक्षयकारी दस्यु मनुष्य का आप हनन करें।

इस विवेचना से स्पष्ट है कि वेद में किन्ही काले वर्ण वाले, चपटी नाक वाले, अकर्मा अन्यव्रत अयज्यु लिङ्ग-पूजक आदि-वासियों का वर्णन नहीं है। यह तो पाश्चात्य विद्वानों ने राज-नीतिक कारणों से भारतीय मूल निवासियों के समुदाय में फूट डालने की मिथ्या-कल्पना की है। पाश्चात्य मतानुयायियों ने जिन मन्त्रों को अपने मत के पोषण में उद्धृत किया है, उनसे उनकी कल्पनायें उपपन्न ही नहीं होती, यही दिखाना इस प्रकरण का उद्देश्य है।

आदिवासियों के विशिष्ट व्यक्ति
और
उनकी समीक्षा

पाश्चात्य एवं उनके अनुयायी विद्वानों के मतानुसार ऋग्वेद में निम्न शम्बर आदि प्रमुख आदिवासी व्यक्तियों का वर्णन मिलता है—

शम्बर

हिल्ले ब्राण्ड्ट का मत है कि—

(क) वह दिवोदास का शत्रु एक वास्तविक व्यक्ति था।

(ख) कुछ भी हो, यह माना जा सकता है कि 'शम्बर' भारत की आदिम जातियों का नेता था, और वह पर्वतों में रहता था।

चुमुरि

'चुमुरि' शब्द अनार्य भाषा का प्रतीत होता हैं, और किसी आदिवासी का नाम हो सकता है।

धुनि

सम्भवतः धुनि कोई आदिवासियों का सरदार था।

पिप्रु

लुडविग, ओल्डेनवर्ग और हिल्ले ब्रांड्ट ने पिप्रु को मनुष्य माना है।

वर्चिन्

सम्भवतः आदिवासियों में से एक रहा हो।

इलीविश

इलीविश किसी दास या दैत्य का नाम है।

दासों को पर्वतों में शरण लेने वाला कहा गया है। प्रमुख दास थे—इलिविश, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन्, शम्बर। (देखो 'दास' शब्द वैदिक इण्डेक्स में)।

वल, शुष्ण, नमुचि आदि दासों के अलावा और भी कुछ दास हैं, जिनका इन्द्र दमन करता है।

(देखो 'वैदिक माइथोलोजी'—इन्द्र प्रकरण)

समीक्षा

मैकडानल और कीथ की यह कल्पना कि 'शम्बर, चुमुरि' आदि मनुष्य जाति के थे, और ये आदिवासियों के प्रमुख व्यक्ति थे, सर्वथा निराधार है।

शम्बरादि

वेद में शम्बर, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन् तथा इलीविश आदि सब मेघों के भेद हैं। वेद-मन्त्रों में जहां-जहां ये पद आये हैं, वहां-वहां मनुष्यों का कोई सम्बन्ध नहीं। इन्द्र और शम्बरादि मेघों का जो युद्ध है, वह आकाश में विद्युत् और मेघों का प्राकृतिक संघर्ष है। आदिवासी पुरुषों के साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। विक्रम संवत् से ३१ सौ वर्ष पूर्व उत्पन्न यास्काचार्य ने स्पष्ट लिखा है कि—**अपां ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्ध-वर्णा भवन्ति।** नि० २।१६॥

वेद के आन्तरिक स्वरूप को जानने वाले यास्काचार्य ने तो मन्त्र में प्राकृतिक युद्ध सिद्ध किया, परन्तु ज्ञानलवदुर्विदग्ध वेदाभिमानी, पाश्चात्य मान्यता वालों ने शम्बरादि शब्दों से किन्हीं आदिवासियों को सिद्ध करने की मिथ्या कल्पना की है।

अब हम उन मन्त्रों पर, जिनमें तथाकथित आदिवासी नेता शम्बर आदि के नाम आये हैं, विचार करते हैं—

(१) शम्बर

प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत्।
ऋक् १।५९।६॥

मन्त्रार्थ—मनुष्य जिस वृत्रहन्ता वैश्वानर अग्नि की वर्षा के लिये प्रार्थना करते हैं, उसी वैश्वानर अग्नि के माहात्म्य को मैं कहता हूं। उसी वैश्वानर अग्नि ने दस्यु (अवर्षण द्वारा प्रजा का उत्पीडक मेघ) का हनन किया, जलों को कम्पित गतिशील किया और शम्बर मेघ के टुकड़े कर दिये।

इस मन्त्र में वैश्वानर अग्नि मध्यमस्थानीय अन्तरिक्षस्थ (इन्द्र) विद्युत् का प्रकरण है। वह विद्युत् जब दस्यु अर्थात् अवर्षक विनाशकारी मेघ तथा शम्बर मेघ का हनन करती है, तब जल प्रवाहित होते हैं।

यास्काचार्य ने निरुक्त ७।२३ में इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है कि शम्बर मेघ है, और उस शम्बर से जल प्रवाहित होते हैं—

तमग्निर्वैश्वानरो घ्नन् अवाधूनोदपः काष्ठाः, अभिनच्छम्बरं मेघम्।

इस प्राकृतिक युद्ध का विस्तृत वर्णन आर्यों और दासों के युद्ध प्रकरण में देखें।

(२) चुमुरि

स यो न मुहे मिथू जनो भूत् सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित्।
ऋक् ६।१८।८॥

अर्थ—जो इन्द्र संग्राम में कभी भी कर्तव्य-विमूढ़ नहीं होता है, जो कभी भी वृथा वस्तुओं को उत्पन्न नहीं करता; किन्तु जो प्रख्यात नाम वाला है, वही इन्द्र शत्रुओं के नगरों को विनष्ट करने के लिये और शत्रुओं को मारने के लिये शीघ्र ही कार्य-रत होता है। हे इन्द्र! तुमने चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर और शुष्ण नामक (मेघों) को विनष्ट किया।

इस मन्त्र में 'चुमुरि' एक मेघ का नाम है। धुनि, पिप्रु, शम्बर, शुष्ण नाम के भी मेघों के प्रकार हैं, जिन्हें इन्द्र अर्थात् विद्युत् अपनी वायु से आवेष्टिन तरंगों द्वारा इन मेघों के पुर अर्थात् घटाओं को छिन्न-भिन्न करता है।

'चुमुरि' शब्द चमु अदने धातु से बनता है। 'चुमुरि' वह मेघ है जो स्वयं जल को खा जाता है, और प्रजा के लिये नहीं छोड़ता।

टिप्पणी—'चुमुरि' शब्द अनार्य भाषा का है, ऐसा 'वैदिक इण्डैक्स' वालों ने लिखा है। इसके लिए उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। इससे उनकी अज्ञानता अथवा पक्षपात प्रतीत होता है।

(३) वर्चिन्

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ।
ऋक् ७।९९।५ ॥

अर्थ—हे इन्द्र और विष्णु ! तुमने शम्बर की ९९ दृढ़ पुरियों को नष्ट किया है। तुमने वर्चिन् नाम के असुर (मेघ) के सौ और हजार वीरों को नष्ट किया है।

इस मन्त्र में वर्चिन् नाम वाला एक प्रकार का मेघ ही है। 'वर्च' शब्द वर्च दीप्तौ धातु से बना है। जिस मेघ में विद्युत् बहुत चमकती है वह 'वर्चिन्' मेघ है। शम्बर मेघ का भी इसी मन्त्र में वर्णन है। यहां वर्चिन् का विशेषण असुर है। निघण्टु १।१० में 'असुर' शब्द मेघ नामों में पढ़ा गया है। इसी मन्त्र में शम्बर नामक मेघ की ९९ पुरियों अर्थात् घटाओं को इन्द्र और विष्णु नष्ट करते हैं, ऐसा कहा गया है। वर्चिन मेघ की सहस्रों टुकड़ियां ही वर्चिन् मेघ के वीर हैं। यह सब आलंकारिक वर्णन है। इस मन्त्र में इन्द्र विद्युत् है, और विष्णु सूर्य है। ये दोनों मिल कर मेघों को छिन्न-भिन्न करते हैं।

(४) इलीविश

न्याविध्यदिलीविशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन् यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ।
ऋक् १।३३।१२ ॥

अर्थ—इलीविश नामक मेघ के दृढ़ जलरोधक बन्धनों को इन्द्र नष्ट करता है। तदनन्तर उस मेघ के उन्नत शृंगों अर्थात्

उन्नत घटाओं को तोड़ कर शोषण-कर्ता मेघ का नाश करता है। हे इन्द्र ! तूने अपने वेग और ओज के आश्रय से वज्र द्वारा युद्धाकांक्षी शत्रु को मारा।

निरुक्त ६।१९ में इसी मन्त्र की व्याख्या में यास्काचार्य ने लिखा है—निरविध्यदिलाविलशयस्य दृढानि व्यभिनच्छृङ्गिणं शुष्णमिन्द्रः। इलाबिल-शयः अर्थात् भूमि के बिलों में सोने वाला। जिस समय भूमि पर वृष्टि द्वारा जल आता है; तो भूमि में प्रवेश कर जाने से इसे इलीविश कहते हैं। निघण्टु १।१ में 'इला' पद पृथिवी-नामों में पढ़ा गया है।

(५) पिप्रु

वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः।
सुदामन् तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः।

ऋक् ६।२०।७॥

अर्थ—हे इन्द्र ! तूने सर्पाकार पिप्रु मेघ के दृढ़ पुरों को बल से विदारण किया और हे शोभनदाता इन्द्र ! तू ऋजिश्वा अर्थात् ऋज्वादिगुणवर्धक दानी पुरुष के लिये देने योग्य धन को देता है।

टिप्पणी—ऋजवः सरलाः श्वानो वृद्धयो यस्मिन् स ऋजिश्वा। अत्र श्वन्शब्दः श्विधातोः कनिन्प्रत्ययान्तो निपातित उणादौ।

इस मन्त्र में पढ़ा गया 'पिप्रु' भी एक प्रकार का मेघ है। 'पिप्रु' शब्द पॄ पालनपूरणयोः धातु से बनता है। जिसका अर्थ है—ऐसा 'मेघ' जो वर्षा द्वारा प्रजा का पालन करता है।

(६) धुनिः

तव॒ ह॒ त्यदि॑न्द्र॒ विश्व॑मा॒जौ स॒स्तो धुनी॒चुमु॑री॒ या ह॒ सिष्व॑प्।
ऋक् ६।२०।१३ ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! संग्राम में ये सब काम तुम्हारे ही हैं, जो तूने धुनि और चुमुरि नामक मेघों को सुलाया अर्थात् मारा।

धुनि भी एक प्रकार का मेघ ही है। निरुक्त १०।३२ में लिखा है—धुनिमन्तरिक्षे मेघम्। अर्थात् यह अन्तरिक्ष में एक प्रकार का 'मेघ' है। यह धुञ् कम्पने स्वादिगण की धातु से बना है—धुनोति इति धुनिः जो मेघ कांपता है।

पाश्चात्य मान्यता वालों ने शम्बर, चुमुरि, धुनि, वर्चिन्, इलीविश आदिकों को आदिवासी सिद्ध करने का जो यत्न किया है, इससे उनकी अज्ञानता अथवा पक्षपात सिद्ध होता है। यदि वेद, निरुक्त तथा व्याकरण का इन्हें ज्ञान होता; तो ऐसी भूल वे नहीं कर सकते थे। यदि उन्होंने आदिवासी और सवर्ण हिन्दुओं में फूट का बीजारोपण करने के लिये वेद का मिथ्या अर्थ किया है, तो इससे उनका पक्षपात सिद्ध होता है।

आर्यों, दासों तथा दस्युओं का युद्ध

पाश्चात्य मत—दासों के विरुद्ध आर्यों के युद्ध के साथ-साथ आर्यों के विरुद्ध भी आर्यों के युद्ध का संकेत मिलता है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आर्य लोग ऋग्वैदिक काल में ही मूल निवासियों की विजय से कहीं आगे निकल गए थे। बाद की संहिताओं और ब्राह्मणों में जिन युद्धों का विवरण मिलता है, वे आर्यों के युद्ध जान पड़ते हैं, जबकि निःसन्देह आर्य और दास शनैः शनैः एक जाति में घुल-मिल रहे थे। (देखो वैदिक इण्डैक्स में आर्य शब्द)

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने वेद-मन्त्रों के द्वारा यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि वैदिक काल में आर्यों और दासों (आदिवासियों) के भयंकर युद्ध हुआ करते थे। इसी आधार को लेकर आर्यों को बाहर से भारत में आने वाला और आदिवासी जैसे द्राविड़, कोल, भील और संथालों को यहां का मूल निवासी बताया है, और यह भी सिद्ध किया है कि आर्यों ने युद्धों में दासों को पराजित करके भारत भूमि पर आधिपत्य स्थापित किया।

समालोचना

पाश्चात्य मतानुयायियों की यह मान्यता भी भ्रान्तिपूर्ण है। वेद में दासों के साथ युद्धों का वर्णन तो आता है, पर वे मानवीय युद्ध नहीं, प्रत्युत प्राकृतिक युद्ध हैं। जैसे—इन्द्र और

वृत्र का युद्ध। वेद में इन्द्र को आर्य[1] कहा गया है, और वृत्र (मेघ) को दास[2] तथा दस्यु कहा गया है। इन्द्र विद्युत् है, वृत्र मेघ है, इन दोनों का परस्पर संघर्ष ही प्राकृतिक युद्ध है। जैसा कि ऋक् १।३२।११—**अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार** अर्थात् जलों का भरा हुआ स्थान वृत्र द्वारा ढका हुआ था। इन्द्र ने वृत्र का वध किया और उस ढके हुए स्थान से जलों को बाहर निकाल दिया। इस मन्त्र से स्पष्ट है।

विक्रम संवत् ३१०० (इकत्तीस सौ) वर्ष से पूर्व के वेद-व्याख्याता निरुक्तकार यास्काचार्य ने इसी मन्त्र के पहले अपने ग्रन्थ में लिखा है कि—वृत्र कौन है ?

तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति।

वृत्र कौन है ? यह मेघ है, ऐसा निरुक्तकारों का पक्ष है। त्वष्टा का पुत्र असुर है, यह ऐतिहासिक पक्ष है (वह इतिहास भी आधिदैविक है मानवीय नहीं), आपों और ज्योतियों के संघर्ष से वर्षा की क्रिया होती है। ऐसे प्रकरणों में उपमा से मन्त्रों में युद्धों का वर्णन है। इसी निरुक्त की व्याख्या में विक्रम संवत् ५५० (पांच सौ पचास) वर्ष से पूर्व के निरुक्त-

---

१. ऋक् ५।३४।६—**इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथा वशं नयति दासमार्यः।** इस मन्त्र में इन्द्र को आर्य कहा गया है।

२. दास शब्द मेघ के विशेषण में आया है, यह ऊपर दर्शाये १।३२।११ मन्त्र के 'दासपत्नीः' शब्द से सिद्ध है। यास्काचार्य ने भी यहां दास का अर्थ क्षयकारी मेघ किया है। इसलिये आर्य और दास आदिवासी और आर्य नहीं, प्रत्युत मेघ और विद्युत् हैं।

टीकाकार दुर्ग ने इस युद्ध के सम्बन्ध में इस प्रकार व्याख्या की है—

यदि मेघो वृत्रो यः एषु मन्त्रेषु, इह मन्त्रे वृत्र इत्येतच्छ्रुतम् । तदेतन्निगमानुप्रसक्तं विचार्यत इत्युपयुक्तस्तच्छब्दः । आह को वृत्रः ? उच्यते । 'मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः ।' निरुक्तमधीयते विदुश्च ये ते नैरुक्ताः । आह यदि मेघो वृत्रो य एषु मन्त्रेषु संग्रामः श्रूयते तत्र कः समाधिरिति । उच्यते, अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते,तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति । अपां च मेघोदरान्तर्गतानां ज्योतिषश्च वैद्युतस्योद्भूतवृत्तेर्मिश्रीभावकर्म जायते । तेन हि वैद्युतेन ज्योतिषा वाय्वावेष्टितेनेन्द्राख्येनोपताप्यमाना आपः प्रस्यन्दन्ते, वर्षभावाय प्रकल्पन्ते । तथैवं सत्युदकतेजसोरितरेतरं प्रतिद्वन्द्वभूतयोरुपमार्थेन रूपककल्पनया युद्धवर्णा भवन्तीति युद्धरूपकाणीत्यर्थः । निरुक्त टीका २।१६ ।।

यास्काचार्य की इस इन्द्र वृत्र युद्ध प्रकरण में वर्णित व्याख्या तथा दुर्ग विरचित टोका का सार यह है कि उस वायु आवेष्टित विद्युत् ज्योति, जिसे इन्द्र का नाम दिया गया है, उसके तेज से प्रतप्त जल वर्षा के लिए बहते हैं । यहां पर जल और तेज का जो परस्पर प्रतिद्वन्द्व भाव है, यही उपमारूप से युद्ध का वर्णन है ।

टिप्पणी—इन्द्र ही विद्युत् है, इसके लिये देखो—

अथ यदुच्चैर्घोषस्तनयन् ब ब बा कुर्वन्निव दहति यस्माद् भूतानि विजन्ते तदस्य (अग्नेः) ऐन्द्रं रूपम् । ऐ० ब्रा० ३।४ ।।

अर्थ—वह जो उच्चघोष ध्वनि से गर्जना ब—ब—बा शब्द करते हुए जलाता हैं, जिससे प्राणी डर जाते हैं, वह उस अन्तरिक्ष की अग्नि का ऐन्द्र रूप हैं ।

२. शतपथ ब्राह्मण ११।६।३।९ में लिखा है—'स्तनयित्नुरेवेन्द्रः' अर्थात् स्तनयित्नुः यह इन्द्र का ही नाम है।

३. शतपथ ब्राह्मण ६।१।३।१४ में लिखा है कि—विद्युत् वा अशनिः अर्थात् विद्युत् व अशनि पर्याय हैं।

४. कौशीतकि ब्राह्मण ६।९ में लिखा है—'यदशनिः इन्द्रस्तेन' अर्थात् अशनि और इन्द्र पर्यायवाचक हैं।

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों तथा निरुक्त द्वारा यह स्पष्ट है, कि यहां कोई आदिवासी और आर्यों के युद्ध का वर्णन नहीं, प्रत्युत आकाश में इन्द्र और वृत्र का प्राकृतिक युद्ध है।

वेद व्याख्याकार यास्काचार्य ने जो इन्द्र-वृत्र युद्ध को प्राकृतिक माना है मानवीय नहीं, उसका आधार यह ऋक् १।३२ सूक्त है—

इन्द्र-वृत्र-युद्ध का एक आलंकारिक सूक्त

इन्द्र॑स्य॒ नु वी॒र्या॑णि॒ प्र वो॑चं॒ यानि॑ च॒कार॑ प्रथ॒मानि॑ व॒ज्री।
अह॒न्नहि॒मन्व॒पस्त॑तर्द॒ प्र व॒क्षणा॑ अभिन॒त् पर्व॑तानाम् ॥१॥

वज्रधारी इन्द्र ने जो प्रथम बल के काम किये हैं, उनका मैं वर्णन करता हूं। प्रथम उसने अहि नामक मेघ का हनन किया। दूसरा वृष्टि का प्रबन्ध किया। तीसरा काम उसने प्रवहणशील पर्वतीय नदियों का मार्ग बनाया।

अह॒न्नहि॒ं पर्व॑ते शिश्रिया॒णं त्वष्टा॑स्मै॒ वज्रं॑ स्व॒र्यं॑ ततक्ष।
वा॒श्रा इ॑व धे॒नव॒: स्यन्द॑माना॒ अञ्ज॑: समु॒द्रमव॑ जग्मु॒राप॑: ॥२॥

पर्वत में आश्रय लेने वाले अहि नामक मेघ का इन्द्र ने वध किया। त्वष्टा ने इन्द्र के लिये शब्दकारी और उपतापकारी

वज्र का निर्माण किया। जिस प्रकार अभिनव प्रसूत गौएं अपने बछड़ों के प्रति जाती हैं; उसी प्रकार मेघ-वध के अनन्तर धारावाही जल वेग से समुद्र की ओर गये।

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३॥

वर्षा करने वाले इन्द्र ने सोम का वरण किया और त्रिकद्रु यज्ञों में चुवाये हुये सोम का पान किया। घनवान् इन्द्र ने मेघों के मुखिया मेघ को अन्तकारी वज्र से मारा।

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४॥

हे इन्द्र! जिस समय तूने मेघों के मुखिया को मारा था, उस समय तूने मायावियों की माया का भी विनाश किया। तदनन्तर सूर्य, उषा और प्रकाश को उत्पन्न किया। अन्त को तुम्हें कोई शत्रु न मिला, अर्थात् सब शत्रु समाप्त हो गये।

अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५॥

इन्द्र ने महान् अन्धकारी वृत्र को छिन्न-बाहु करके बड़े विध्वंसकारी वज्र से मारा। कुठार से काटे हुये वृक्ष-स्कन्ध की भांति वह वृत्र (मेघ) पृथ्वी पर गिरा।

अ॒यो॒द्धेव॑ दु॒र्मद॒ आ हि जु॒ह्वे म॑हावी॒रं तु॑विबा॒धमृ॑जी॒षम् ।
नाता॑रीदस्य॒ समृ॑तिं व॒धानां॒ सं रु॒जानाः॑ पिपिष॒ इन्द्र॑शत्रुः ॥६॥

दुर्मद वृत्र ने अपने आप को शत्रुहीन समझ कर महावीर, बहु-विध्वंसक शत्रुओं के अपार्जक इन्द्र को युद्ध में ललकारा। इन्द्र के वधकारी कार्य से वह वृत्र बच नहीं सका। इन्द्रशत्रु वृत्र नदियों में गिर कर नदियों को भी पीसने लगा अर्थात् वृत्र के वध पर इतने वेग से वृष्टि हुई कि नदीवेग के कारण पत्थर भी फूटने लगे।

अ॒पाद॑ह॒स्तो अ॑पृतन्य॒दिन्द्र॒मास्य॒ वज्र॒मधि॒ सानौ॑ जघान ।
वृष्णो॒ वध्रिः॑ प्रति॒मानं॒ बुभू॑षन् पुरु॒त्रा वृ॒त्रो अ॑शय॒द्व्य॑स्तः ॥७॥

पादरहित और हस्तरहित वृत्र ने युद्ध के लिये इन्द्र को आहूत किया। इन्द्र ने इस वृत्र के उन्नत स्थान पर वज्र से आघात किया। जिस प्रकार नपुंसक मनुष्य वीर्यवान् मनुष्य की समानता करने का व्यर्थ यत्न करता है, उसी प्रकार वृत्र ने भी व्यर्थ यत्न किया। इन्द्र द्वारा अनेक स्थानों पर ताड़ित हुआ वृत्र क्षत होकर भूमि पर गिरा।

न॒दं न भि॒न्नम॑मु॒या शया॑नं॒ मनो॒ रुहा॑णा॒ अति॑ य॒न्त्यापः॑ ।
याश्चि॑द्वृ॒त्रो म॑हि॒ना प॒र्यति॑ष्ठ॒त्तासा॒महिः॑ पत्सु॒तःशीर्ब॑भूव ॥८॥

जिस प्रकार टूटे हुये तटों में जल बहता है, उसी प्रकार भूमि पर गिरे वृत्र का अतिक्रमण करके प्रजा को हर्षाने वाले जल बहते हैं। जो वृत्र जीवित अवस्था में अपनी महिमा से

जलों को रोके हुये था, अब वही वृत्र मेघ उन जलों के पावों के तले बह रहा है।

नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीत् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः॥९॥

वृत्र की रक्षा के लिये वृत्र की माता दनु उस पर लेटी, जिससे वृत्र बच जाए। इन्द्र ने नीचे से वृत्र पर प्रहार किया, उस समय माता ऊपर और पुत्र दानु नीचे था। तदनन्तर जिस प्रकार गौ अपने बछड़े के साथ सोती है, उसी प्रकार वृत्र की माता दनु भी सदा के लिये सो गई।

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥१०॥

न ठहरते हुये और न बैठते हुये जलों के मध्य में गुप्त और नाम रहित वृत्र के शरीर को जल पहचानते हैं, तब इन्द्र का शत्रु वृत्र दीर्घ तम अर्थात् दीर्घ निद्रा में सदा के लिए सो गया।

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार॥११॥

दासपत्नीः अर्थात् दास (वृत्र) जिनका पति है, (अहि-गोपाः) अन्तरिक्ष में गति करने वाला अहि (मेघ) जिनका रक्षक है ऐसे जल, पणिः[1] द्वारा जैसे गौवें[2] निरुद्ध थीं उसी

१. पणिः—मेघ जो रश्मियों को आवृत करता अर्थात् छिपाता है।
२. गौः—रश्मियां। निघ० १।५॥

प्रकार जलों के छिद्र निरुद्ध थे, इन्द्र ने उस वृत्र का वध किया और आवृत छिद्रों को खोला।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ।१२।

हे इन्द्र देव ! वृत्र ने तेरे वज्र पर प्रहार किया था, तूने घोड़े की पूंछ जैसे मक्खियों का निवारण करती है, उसी प्रकार अनायास से ही उस प्रहार को विफल कर दिया। तूने गौओं को जीता, तूने सोम को जीता, और तूने सात नदियों को प्रवाहित किया।

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद् ध्रादुनिं च।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३॥

इन्द्र और अहि (वृत्र मेघ) जब युद्ध हो रहा था तब विद्युत् गर्जन ह्रादुनि अर्थात् हन्-हन् मारो-मारो, यह शब्द भी इन्द्र को परास्त नहीं कर सके। नहि वृत्र की अन्य मायायें भी पराजित कर सकीं। अन्त में मघवा अर्थात् धन-वान् इन्द्र ही विजयी हुआ।

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ।१४।

हे इन्द्र ! वृत्रहनन के समय जब तुम्हारे हृदय में भय उत्पन्न हुआ था, तो क्या तूने अहि (वृत्र) के घातक किसी अन्य को देखा था। श्येन पक्षी की भांति तूने निनानवें नदियों के जल को प्रवाहित किया था। हे इन्द्र ! तुझे भय न हो, यही हमारी प्रार्थना है।

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥

इन्द्र जंगम और स्थावरों का राजा है। वह वज्रबाहु इन्द्र शांत और शृंगधारी पशुओं का भी राजा है। वह मनुष्य का भी राजा होकर निवास कर रहा है। जिस प्रकार चक्रनेमि आरों को धारण करती है, इसी प्रकार इन्द्र ने भी सब को धारण किया हुआ है।

'वैदिक मैथोलोजी' के लेखक मैकडानल को मानना ही पड़ा कि वेद में वर्णित इन्द्र वृत्र का युद्ध मानवीय युद्ध नहीं है, अपितु वह प्राकृतिक घटनाओं का वर्णन है। इन्द्र प्रकरण[1] में वह लिखता है—

इन्द्र वर्तमान काल में वृत्र का वध करते हैं, या वैसा करने के लिए उनका आह्वान किया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि उनका युद्ध अनवरत रूप से नवीन होता चला जाता है। यह प्राकृतिक दृश्य के सतत नवीभाव का ही गाथात्मक प्रतिरूप है। वृत्र का वध करके उन्होंने अनेक उषाओं और शरदों तक प्रवाहित होने के लिये सरिताओं को उन्मुक्त कर दिया है। अथवा भविष्य में ऐसा करने के लिए उनसे प्रार्थना की गई है। वे पर्वतों को विदीर्ण कर देते हैं, और इस प्रकार सरिताओं को प्रवाहित करते हैं।

---

१. हिन्दी अनुवाद (देव शास्त्र) पृष्ठ १४१।

आदिवासियों की बस्तियों का विध्वंसन

पाश्चात्य मत

(क) दासों के 'पुर' थे। दासों की सम्पत्ति अवश्य अधिक थी, किन्तु उन्हें आक्रामकों के समकक्ष सभ्यता वाला नहीं कहा जा सकता। दासों को पर्वतों में शरण लेने वाला कहा गया है। प्रमुख दास थे—इलिविश, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन् और शम्बर। दस्युओं के नाम इन्होंने लिखे हैं—शुष्ण, चुमुरि तथा शम्बर। (देखो दास शब्द)।

(ख) 'शारदी पुरों' के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे दासों के पुर थे। इससे ज्ञात होता है कि शरद् काल में उन्हें आर्यों के विरुद्ध दास लोग ले लेते थे। अथवा नदियों की बाढ़ से बचने के लिये इनकी शरण ली जाती थी। (देखो 'पुर' शब्द)

ये ऊपर के वाक्य हमने मैक्डोनल और कीथ रचित 'वैदिक इण्डैक्स' से उद्धृत किये हैं। इन्होंने लिखा है कि इलिविश, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन् तथा शम्बर ये प्रमुख दास थे। इन्होंने इन्हें मनुष्य माना है और भारतीय आदिवासी सिद्ध किया है। जब आर्य लोग युद्ध करते थे, तो इन आदिवासियों के पुरों (बस्तियों) का विध्वंसन करते थे।

अब इस निराधार कल्पना की समीक्षा की जाती है—

समीक्षा

यह ठीक है कि वेदों में दासों के पुरों को विध्वंस करने का वर्णन आता है। इन्द्र द्वारा किस-किस दास के कितने-कितने पुर तोड़े जाते थे, इसका वर्णन वेद-मन्त्रों द्वारा ही किया जाता है—

त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः। ऋक् १।५१।५॥

अर्थ—हे इन्द्र! हे नृमण अर्थात् मनुष्यों पर अनुग्रह मनवाले! तूने पिप्रु नामक असुर के पुर' अर्थात् निवास स्थानों को नष्ट किया है।

त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरः। ऋक् १।५३।८॥

अर्थ—हे इन्द्र! तूने वङ्गृद नामक असुर के सैकड़ों पुरों (नगरों) को ध्वंस किया है।

सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः। ऋक् ६।२०।१०॥

अर्थ—हे इन्द्र! तुमने वज्र द्वारा शरद् ऋतु में बने हुए दास के सात पुरों को तोड़ा।

शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः। ऋक् १।५१।११॥

अर्थ—हे इन्द्र! तूने शुष्ण नामक असुर के प्रवृद्ध नगरों को तोड़ा।

पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः। ऋक् १।१०३।३॥

अर्थ—हे इन्द्र! दास-सम्बन्धी पुरों को तोड़ते हुए विचरण करते हो।

त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव। ऋक् १।५४।६॥

अर्थ—हे इन्द्र! तूने शम्बर की ९९ बस्तियों को तोड़ा।

नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य । ऋक् २।१९।६ ॥

अर्थ—हे इन्द्र! तूने शम्बर के ९९ पुरों को तोड़ कर ध्वंस किया।

अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य ।

ऋक् ४।२६।३ ॥

अर्थ—मैंने प्रहृष्ट मन वाले ने, शम्बर की ९९ बस्तियों को एक ही समय में विध्वंस किया।

तां च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।

ऋक् ७।१९।५ ॥

अर्थ—हे वज्रधारी इन्द्र! तेरे बल इस प्रकार के हैं कि तूने तत्काल ही शम्बर के ९९ पुरों का ध्वंस किया था।

हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नि तारीत् । ऋक् २।२०।८ ॥

अर्थ—दस्यु को मार कर इन्द्र ने उनके लोहे के पुरों को नष्ट किया।

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् । साकमेकेन कर्मणा ॥

ऋक् ३।१२।६ ॥

अर्थ—इन्द्र और अग्नि इन दोनों ने मेघों को पालन करने वाली ९० पुरियों को एक ही झटके से हिला दिया।

प्र ते वोचाम वीर्या३या मन्दसान आरुजः । पुरो दासीरभीत्य ॥

ऋक् ४।३२।१० ॥

अर्थ—हे इन्द्र! तुझ मोदमान अर्थात् प्रहृष्ट ने दासों की बस्तियों को अभिमुख जाकर तोड़ा। हम तेरे बलों को विशेष करके कहते हैं।

अध्व॑र्यवो॒ यः श॒तं शम्ब॑रस्य॒ पुरो॑ बि॒भेदा॒श्म॑नेव पू॒र्वीः ।

ऋक् २।१४।६ ॥

अर्थ—हे अध्वर्यु लोगो ! जिस इन्द्र ने पत्थर तुल्य वज्र से शम्बर नामक असुर के सौ पुरों को तोड़ा ।

समीक्षा

पाश्चात्य मान्यता के विद्वानों ने शम्बर, शुष्ण, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन्, इलिविश नाम के दासों तथा दस्युओं को प्रमुख आदिवासी मान कर उन्हें मानवीय रूप का व्यक्ति माना है । जब कि यह धारणा निराधार और कपोल-कल्पित है । इन्द्र विद्युत् है और वायु द्वारा आवेष्टित विद्युत्तरंगे मेघों को टकराती हैं, यही इन्द्र और मेघों का संघर्ष है । शम्बर, शुष्ण आदि सब मेघों के नाम हैं, और उनकी जो घटायें उठती हैं, वे दुर्गों और पुरों का रूप धारण कर लेती हैं । ये ही शम्बर, चुमुरि आदि मेघों की बस्तियां हैं । इन्हें विद्युत् तरङ्ग आवेष्टित वायु तोड़ती है, यही उनकी बस्तियों का विध्वंसन है । 'वैदिक माइथोलोजी' (वैदिक देवशास्त्र, पृष्ठ १४४) में इन्द्र के प्रकरण में मैक्डोनल ने स्वयं लिखा है—

विद्युत्-तूफान की गाथात्मक कल्पना में मेघ भी बहुधा वायु में स्थित दानवों के पुर बन जाते हैं । उनकी संख्या ९०-९९ या १०० बतलाई गई है । ये पुर गतिमान, शारद, धातु के बने हुए अथवा पाषाण के हैं । इन्द्र इन्हें भेद डालते हैं । इसी लिये 'पुरभिद्' विशेषण इन्द्र के लिये प्रयुक्त हुआ है ।

इस पुस्तक में मैक्डोनल मानता है कि—विद्युत् और वायु से दानवों के पुर बन जाते हैं । परन्तु अपनी दूसरी रचना 'वैदिक इण्डेक्स' (हिन्दी अनुवाद—वैदिक कोश) में अपने ही विरुद्ध

लिखते हैं—'ये आदिवासी शरद् ऋतु में युद्धों के समय इन पुरों में आश्रय लेते थे। अथवा नदियों के चढ़ाव के कारण ये उन पुरों में निवास करते थे।' इसी से सिद्ध है कि आदिवासी पुरों के सम्बन्ध में वह स्वयं ही भ्रम में पड़े हुये हैं।

जब 'शम्बर' आदि सब मेघ ही हैं, तो उनके पुरों में शरद् ऋतु में आश्रय लेने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। 'शारदी पुरः' का अर्थ है—शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाली मेघ-घटाएं।

वेद-मन्त्र में एक स्थान पर 'आयसी पुरः' लिखा है। एक स्थान पर 'पाषाण पुरः' लिखा है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उन मेघ-घटाओं में पत्थर और लोहे की बनी हुई बस्तियां थी। इसका आलंकारिक अर्थ यह है कि पत्थर और लोहे के तुल्य दृढ़ घटाएं, जिन्हें छिन्न-भिन्न करने के लिये इन्द्र को अधिक समय लगता है।

वेद मन्त्रों में भिन्न-भिन्न मेघों के भिन्न-भिन्न पुर अर्थात् घटाओं का वर्णन आता है। किसी के १००, किसी के ९९, और किसी के ९० लिखे हैं। वेद में भिन्न-भिन्न प्रकार के मेघों की जो भिन्न-भिन्न पुर संख्या लिखी है, इसमें गूढ़ रहस्य है। यह मेघ-विद्या के ज्ञाता ही अनुसंधान द्वारा सिद्ध कर सकते हैं, कि किन-किन मेघों से कितनी घटाएं बनती हैं।

उपसंहार

इस पुस्तक में यह सिद्ध किया गया है कि—आर्य और आदिवासियों के युद्ध का वर्णन वेद में नहीं है। और यह भी सिद्ध किया गया है कि—आर्य, दास और दस्यु जातियां कोई नहीं थीं, प्रत्युत वेद के ये पद गुणवाचक हैं, जातिवाचक नहीं।

आरम्भ में आर्य शब्द दो प्रकार से सिद्ध किया गया है— एक अपत्यार्थ में, जैसे **अर्यस्य अपत्यं आर्यः** और दूसरा **ऋ गतिप्रापणयोः** धातु से ण्यत् प्रत्यय लगा कर सिद्ध किया गया है। इसका अर्थ है—**अरणीयः प्रापणीयः गमनीयः**, अर्थात् जिसके पास जाया जाये। परन्तु वेद में ऐसे भी मन्त्र आते हैं, जहां आर्य पद शत्रु के विशेषण में आया है। वहां इसका अर्थ होगा बलवान अथवा महान् अर्थात् अभिगमनीय=जिस शत्रु पर अभिगमन अर्थात् चढ़ाई करनी चाहिये।

'दास' शब्द वेद में मुख्यतः दो धातुओं से बना है—एक **दसु उपक्षये** और दूसरा **दासृ दाने** से। उपक्षयकारी घातक के लिए दसु धातु का प्रयोग हुआ हैं, और जहां वेद में भृत्य या किंकर अर्थ में दास पद आया है, वहां 'दासृ-दाने' धातु से बना है। वेद में दास शब्द आद्युदात्त और अन्तोदात्त भेद से उपलब्ध होता है। जहां आद्युदात्त है वहां भाव और कर्म में प्रत्यय होता है। इसका अर्थ है—**दस्यते इति दासः**। अर्थात् जिसको मारा जाए। और अन्तोदात्त में '**दासयति इति दासः**' जो मारता है अथवा जो हिंसक है, वह दास है।

'दस्यु' पद वेद में दसु उपक्षये धातु से बना है। 'दस्यति नाशयति इति दस्युः' जो नाश करता है वह दस्यु है।

वेद में 'आर्य' शब्द मनुष्यों तथा जड़ पदार्थों के लिये भी प्रयुक्त हुआ है। आर्य शब्द इन्द्र, श्रेष्ठ व्यक्ति, ज्योति, व्रत, तथा प्रजा के विशेषणों में आया है। इसी प्रकार 'दास' शब्द भी वेद में मनुष्यों तथा जड़-पदार्थों के लिए आया है। दास और दस्यु पद मनुष्यों और शम्बर आदि के विशेषण में भी आये हैं।

पाश्चात्य मान्यता वालों ने दास और दस्यु पदों से जो भारत के आदिवासियों की कल्पना की है,यह सब भ्रांतियां वेद को आर्यों की दृष्टि से अपमानित करने के लिए लिखी गई हैं।

इस पुस्तक के पढ़ने से विद्वानों को निश्चय हो जायेगा कि आर्य और दस्यु तथा दासों का युद्ध जो वेद में आया है, वह मानवीय नहीं, प्रत्युत इन्द्र-वृत्र अथवा विद्युत् और मेघ का अन्तरिक्ष में जो संघर्ष है, वह प्राकृतिक युद्ध है। पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने जो मनुष्यों का युद्ध है, ऐसा सिद्ध करने की चेष्टा की है, वह निराधार कल्पना है।

आदिवासी

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने शम्बर, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, वर्चिन् तथा इलीविश शब्दों के आधार से यह लिखा है कि—ये लोग आदिवासियों के प्रमुख सरदार थे। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। शम्बर आदि सब मेघों के नाम हैं। इसके लिए ऋक् १।५९।६ देखिये। मन्त्र में स्पष्ट है कि जब इन्द्र अर्थात् विद्युत् तरङ्गों ने शम्बर अर्थात् मेघ पर प्रहार किया तो शम्बर मेघ से जल की धारायें छट निकलीं। निरुक्त में भी इन्हें मेघ

ही लिखा है। अतः पाश्चात्य मान्यता वालों की उक्त कल्पना भी उनकी अज्ञानता अथवा पक्षपात को सिद्ध करती है।

चपटी नाक वाले आदिवासी

वेद में 'अनास्' शब्द आया है, इसे देख कर पाश्चात्य मान्यता वालों ने अर्थ किया है कि—जिनकी नासिका नहीं ऐसे चपटी नाक वाले आदिवासी। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। यहां अनास् का अर्थ है—'न शब्द करने वाले' अर्थात् मूक मेघ, जो गरजते नहीं। यह 'अनास्' शब्द दस्यू मेघ के विशेषण में आया है। यहां 'चपटी नाक वाले' लिखना भ्रान्ति नहीं तो और क्या है?

काले वर्ण के आदिवासी

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने भारत के आदिवासियों को कृष्णवर्ण अर्थात् काले रंग की त्वचा वाले लिखा है। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। उन्होंने जितने मन्त्र अपने पक्ष की पुष्टि में दिये हैं, उन मन्त्रों में कृष्णवर्ण मेघ तथा अन्धकारमयी रात्रि का वर्णन है। मन्त्रों में मनुष्यों का कहीं प्रकरण नहीं है।

आदिवासियों की बस्तियों अर्थात् पुरों का विध्वंसन

पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने लिखा है कि आदिवासियों के पुर थे। वे युद्ध के समय उन अपनी बस्तियों का आश्रय लेते थे। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। पुरों के प्रकरण में मनुष्यों का कहीं वर्णन नहीं आता है। यह भी एक प्रकार के मेघ हैं, जिनकी तूफ़ान के समय घटायें उठती हैं, उन घटाओं को ही वेद में मेघों के पुर अर्थात् नगर लिखा है। इन्द्र अर्थात् विद्युत् वायु आवेष्टित तरङ्गों से उन घटाओं को तोड़ते हैं, यही इन्द्र का असुरों अर्थात् मेघों की पुरियों का विध्वंसन है। इस

प्रकार भारत के आदिवासियों के नगरों को आर्य तोड़ते थे, ऐसा लिखना उनकी अज्ञानता और पक्षपात को सिद्ध करता है।

आदिवासियों का धर्म

आर्यावर्त में फूट का बीजारोपण करने के लिए पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने लिख दिया कि—द्रविड़, कोल, भील, संथाल आदि मूल-निवासियों का धर्म बाहर से आये हुए आर्यों से पृथक् था। उन्होंने लिखा है कि आदिवासी यज्ञों के विरोधी थे, उनका प्रमुख धर्म लिङ्ग-पूजा था। यह भाव उन्होंने वेद में आये हुए शिश्नदेव पद से सिद्ध करने का यत्न किया है। उनकी यह धारणा भी मिथ्या एवं कल्पित है। वेद के प्रकरण और ३१ सौ वर्ष विक्रम पूर्व में उत्पन्न हुये यास्काचार्य ने 'शिश्नदेव' का अर्थ किया है—अब्रह्मचर्याः अर्थात् व्यभिचारी। 'शिश्नदेव' पद से शिश्नेन ये क्रीडन्ति ते शिश्नदेवाः अर्थात् जो उपस्थेन्द्रिय से क्रीडा में रत भोगवादी हैं, जो दिन-रात शिश्न में ही रत हैं, वे व्यभिचारी 'शिश्नदेव' कहलाते है।

आदिवासी लिङ्ग-पूजक थे, ऐसा लिख कर उन्होंने वेद के अर्थों में अनर्थ करने का यत्न किया है।

आर्यों और आदिवासियों का युद्ध

शम्बर, चुमुरि और धुनि आदि शब्दों को वेद में देखकर पाश्चात्य मान्यता के लेखकों ने सिद्ध करने का यत्न किया है कि ये आदिवासियों के प्रमुख नेता थे।

यह भ्रान्ति उन्होंने इसलिए फैलाई कि यह सिद्ध किया जा सके कि आर्य लोग बाहर से आये, और यहां के मूल-निवासी आदिवासियों से युद्ध करके विजयी हुए। इनकी यह कल्पना भी निराधार है। क्योंकि वेद में शम्बर, चुमुरि आदि मनुष्यों

के नाम नहीं हैं, ये तो मेघों के नाम हैं, और वेद-मन्त्रों में प्रकरण भी मेघों का ही है। अन्तरिक्ष में इन्द्र (विद्युत्) और वृत्र (मघ) का जो प्राकृतिक संघर्ष है, यही आधिदैविक युद्ध है। यास्काचार्य ने भी लिखा है कि इन वेद मन्त्रों में 'उपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति'। इस रूपकालङ्कार को आदिवासी और आर्यों का युद्ध सिद्ध करना अपनी अज्ञानता अथवा पक्षपात सिद्ध करना है।

अन्तिम निवेदन

मुझे दुःख से लिखना पड़ता है कि अभी तक भी विश्व-विद्यालयों, महाविद्यालयों में पढ़ाया जा रहा है कि आर्यों ने भारत के आदिवासियों को युद्ध में परास्त करके भारत में आधिपत्य जमाया। जब हमने यह सिद्ध कर दिया कि आर्य, दास और दस्यु जातिवाचक शब्द नहीं, और यह भी सिद्ध कर दिया कि आर्य से श्रेष्ठ, और दास तथा दस्यु से अनार्य अर्थ ग्रहण किया जाता है, तो फिर आर्यों का आदिवासियों के साथ युद्ध का कोई आधार नहीं रहता। जब तक इन शिक्षणालयों में इस प्रकार की भ्रान्ति-पूर्ण वेद-विरोधी विचार-धारा को समाप्त नहीं किया जायेगा, तब तक द्रविड़, कोल, भील आदि भारतीयों के हृदय में आर्यों अर्थात् सवर्ण हिन्दुओं के प्रति घृणा बनी रहेगी। हमारा मुख्य कर्तव्य है कि हर प्रकार से इस वेद-विरोधी विचार-धारा को नष्ट करके भारत का कल्याण करें।

प्राचीन आर्ष वाङ्मय से सम्बद्ध तथा ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थ

१. **यजुर्वेदभाष्य-विवरण (प्रथमभाग)**—इस ग्रन्थ में महर्षि दयानन्द प्रणीत यजुर्वेदभाष्य के प्रथम दस अध्यायों पर ऋषिभक्त वेदमर्मज्ञ स्वर्गीय श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु कृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। मूल वेदभाष्य को ऋषि के हस्तलेखों से मिलान करके छापा गया है। विस्तृत भूमिका तथा वेदविषयक विविध टिप्पणियों से युक्त। बढ़िया कागज, सुन्दर मुद्रण, सुदृढ़ जिल्द। मूल्य १६-००

द्वितीय भाग छप रहा है।

२. **ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्म-चरित।** मू० ०-५०

३. **ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन परिशिष्ट सहित**—सं० श्री पं० भगवद्दत्तजी। मू० ७-७५

४. **संस्कारविधि**—ले० महर्षि दयानन्द सरस्वती। द्वितीय संस्करण पर आधृत, अजमेर-मुद्रित संस्करणों के दोषों से रहित; टिप्पणियों से युक्त; शुद्ध मनोहर मुद्रण। मू० १-७५। सजिल्द २-२५

५. **संस्कार-समुच्चय**—लेखक—पं० मदनमोहन विद्यासागर। संस्कारविधि की व्याख्या तथा परिशिष्ट में अनेक समयोपयोगी कर्मों का संग्रह। सजिल्द मूल्य १२-००

६. **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**—सं० पं० युधिष्ठिर मीमांसक। मोटे टाइप, बड़े आकार में सुन्दर शुद्ध और सटिप्पण संस्करण। मू. १२-००

भूमिका पर किए गए आक्षेपों के उत्तर के लिए परिशिष्ट १-५०

७. **निरुक्त-शास्त्र**—श्री पं० भगवद्दत्तजी कृत नैरुक्त-प्रक्रियानुसारी हिन्दीभाष्य सहित। मू० १५-००

८. **ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन**—ले० प्रो० भवानीलाल जी भारतीय एम० ए०, पी-एच० डी०। मू० सजिल्द ६-०० मात्र।

९. **पूना-प्रवचन (उपदेश-मञ्जरी)**—ऋषि दयानन्द सरस्वती के १५ व्याख्यान मू० २-५०

१०. **वैदिक-स्वर-मीमांसा**—ले० पं
संशोधि त परिवर्धित द्वितीय संस्करण । वैदि
विवेचनात्मक ग्रन्थ । उत्तर प्रदेश शासन द्वा

११. **वैदिक ईश्वरोपासना**—पातञ्ज
पयोगी सूत्रों की ऋषि दयानन्दकृत व्याख्य
दुरङ्गी छपाई, मुख पृष्ठ पर आकर्षक ऋषि-

१२. **ध्यानयोग-प्रकाश**—ले० ऋषिद
ग्रहण करने वाले महायोगी महात्मा स्वामी
विषय का अनूठा ग्रन्थ । द्वितीय संस्करण मू० ३-२५

१३. **संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास**—ले० पं० युधिष्ठिर मीमांसक । ग्रन्थ में आज तक के प्रमुख वैयाकरणों तथा उनके ग्रन्थों का इतिहास दिया गया है । मू० भाग १, १५-००, भाग २, १५-००

१४. **बृहद् हवनमन्त्र**—मन्त्रों का शब्दार्थ तथा भावार्थ हिन्दी में । सं० पं० रामावतार शर्मा मू० ०-७५

१५. **आर्याभिविनय**—लेखक ऋषि दयानन्द सरस्वती । दुरंगा गुटका साईज । सजिल्द मू० १-००

१६. **व्यवहारभानु**—ले० ऋषि दयानन्द सरस्वती मूल्य ०-३५

१७. **आर्योद्देश्यरत्नमाला**— ,, ,, मू० ०-१०

१८. **हवनमन्त्र**— ,, ,, मूल्य ०-१०

१९. **सन्ध्योपासनविधि**— ,, ,, मूल्य ०-१०

२०. **सन्ध्योपासनविधि**—दैनिक हवन-मन्त्र सहित । मू० ०-१५

२१. **पंचमहायज्ञविधि**—ले० ऋषिदयानन्द सरस्वती । मू० ०-३५

रामलाल कपूर ट्रस्ठ, बहालगढ़
(सोनीपत-हरयाणा)